लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या

श्रीकृष्ण दास

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

'माइ के रोये से नदिया बहत है'

विषय सूची

प्रथ

भूमिका

लोक गीतों का संग्रह करना, उनकी व्याख्या करना, उनका मौलिक संदेश समझना और वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुए उन्हें समाज की उन्नति और विकास के आधार के रूप में प्रयुक्त करना अत्यावश्यक हो गया है। सच यह है कि हमें स्वयं अपने को खोजना है। यह खोज कोई साधारण खोज न होगी। जो तथ्य और तत्व विस्मृति की अनेक पर्तों में दब गये हैं, जो भावधाराएँ विदेशी सभ्यता के जलते सिकताकणों के नीचे खो गयी हैं, जो लोग अपनी परंपराओं, विकास क्रम और इतिहास को भूल गये हैं, जिस जाति का आत्मविश्वास तक डिग गया है, उसे उसकी पुरानी निधियों के प्रति जागरूक बनाना, उसे इतना समर्थ बना देना कि वह अपने पुरखों की कृतियों और रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन कर सके, उन भावधाराओं को फिर से चमका देना जो कभी हमारी जाति को जीवित और गतिशील बनाये हुए थीं, उन तथ्यों और तत्वों को फिर से उभार कर ऊपर लाना जो हमारे सांस्कृतिक जीवन का मूल आधार थीं, आसान काम नहीं है।

इस क्षेत्र में खोज और शोध का कार्य करने वालों के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। उनकी सहायता कोई नहीं करता। विदेशों में अनेक सभाएँ और समितियाँ ऐसी हैं जो इस विषय पर काम करनेवालों को नाना प्रकार की सहायता और सुविधाएँ देती रहती हैं। हमारे देश में ऐसा कुछ नहीं है। हमारे विश्व विद्यालयों में इस विषय पर खोज-कार्य हो रहा है। पिछले दस वर्षों में इस विषय की ओर सबका ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट हुआ है। परन्तु विश्वविद्यालयों में भी इस बात की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है कि छात्रों को एक विषय में दक्षता प्राप्त हो जाय। वहाँ यह प्रयास प्रायः नहीं किया जाता कि जो छात्र इस विषय पर काम करना चाहते हैं उनमें ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने की इच्छा के साथ साथ श्रद्धा, स्नेह, सहानुभूति और व्यापक दृष्टि भी पैदा हो। फलस्वरूप वे विद्वान तो हो जाते हैं, किन्तु, सजग, सक्रिय कार्यकर्ता अथवा उदारचेता विचारक नहीं हो पाते। उनमें

न वह चेतना जाग पाती है कि वे समस्त बन्धनों और सीमाओं को तोड़ सकें, न वह विचारशीलता आ पाती है कि वे उन तहों और पर्तों को सही रूप में उतार सकें, अलग कर सकें, जो इन गीतों के विकासक्रम को ढँके हुए हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस महत्वपूर्ण कार्य में उनका उतना अधिक सहयोग नहीं मिलता जितने अधिक सहयोग की अपेक्षा उनसे की जाती है।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है। परन्तु उसके कर्मचारी इस कार्य में आगे बढ़ने की मनोवृत्ति का यथेष्ट परिचय नहीं देते। वे अन्य कार्य अथवा योजना की भाँति इस कार्य में भी सफलता का सस्ता नुस्खा चाहते हैं। मगर इस क्षेत्र में सफलता पाना इतना सहज नहीं है।

ऐसे अवसर पर जब कि हमारे राष्ट्र की सभी प्रतिभाएँ मिल कर समाज के अभ्युत्थान संबंधी कार्यों तथा योजनाओं को सफल बनाना चाहती हैं, इन लोक गीतों के संग्रह, व्याख्या, स्वर लिपियों की सुरक्षा आदि के बारे में कोई सुनियोजित कार्य नहीं हो रहा है। ऐसा क्यों है? इन लोक गीतों की इतनी उपेक्षा क्यों हो रही है?

हमारा बुद्धिजीवि वर्ग दो प्रकार की मानसिक गुलामी से संत्रस्त रहा है। या तो वह यह समझता रहा है कि जो कुछ उच्च और महान है वह सब पाश्चात्य साहित्य में है अथवा फिर जो कुछ महत्वपूर्ण और गौरवशाली है वह संस्कृत साहित्य या अन्य शिष्ट साहित्यों में ही है। लोक साहित्य और लोक गीतों को वह अपढ़, असंस्कृत, अशिष्ट, लोगों की कुघड़, अटपटी, ज्ञान-विहीन तथा कल्पना शून्य, कला हीन रचनाओं से अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानता था। इसी लिए आज जब सांस्कृतिक उत्सवों पर हम लोक गीतों, लोक नृत्यों आदि को सुनते-देखते हैं तो हमें कुतूहल अधिक होता है, हमें ये चीज़ें कुछ विचित्र सी लगती हैं, मज़ेदार मालूम होती हैं, इनसे हमारा पर्याप्त मात्रा में मनोरंजन होता है; परन्तु हम इनसे प्रेरणा नहीं ग्रहण करते, हम इनसे कुछ लेते नहीं, सीखते नहीं, हम इस साहित्य-सरिता में अवगाहन कर अपने तन मन को अधिकाधिक स्वस्थ और पवित्र नहीं बना पाते।

अमेरिका, जर्मनी, इंगलैंड, फ्रांस और अब सोवियत रूस में इस संबंध में अच्छा काम हो रहा है। लगभग १०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्य

देशों में इस संबंध में खोज शोध का कार्य आरम्भ हुआ तो वहाँ के साहित्य-कारों और विद्वानों ने लोकगीतों और लोक साहित्य के प्रति वही अरुचि और उदासीनता प्रकट की जो आज हिन्दी के शिष्ट साहित्य के कतिपय समर्थक लोक गीतों और लोक साहित्य के प्रति दिखा रहे हैं। परन्तु उदासीनता और उपेक्षा की यह परंपरा अधिक दिनों तक चल न सकेगी। जिस तरह बिना धरती से जीवन-रस प्राप्त किए कोई भी पौधा फल फूल नहीं सकता, उसी प्रकार बिना लोक साहित्य और लोकगीतों से सीधा संबंध स्थापित किए, बिना उससे शक्ति प्राप्त किए, कोई भी शिष्ट साहित्य टिकाऊ, शाश्वत अथवा अमर नहीं हो सकता।

जहाँ तक हमारे देश में लोक साहित्य की खोज का संबंध है, कर्नल टाड ने राजस्थान का इतिहास लिखते समय सबसे पहिले वहाँ की लोक वार्ताओं को भी संगृहीत किया। श्री आर० सी० टेम्पल ने अपनी पुस्तक 'लीजेंड्स आव दी पंजाब' की भूमिका में कहा था कि 'टाड की पुस्तक के बाद पचास वर्ष की अवधि में; स्लावों के गीतों और लोक वार्ताओं का बहुत सा अनुलेखन बाद के लेखकों ने कर डाला है। रूसी, पोली, श्वेत क्रोशीय, सर्वी, मोरावी, वेंडी, रूथेनी तथा आर्यों पर पूरा पूरा काम हुआ है। भारत में, किंबहुना जहाँ के शासक अपनी उच्च बुद्धि पर, अपने भेजे हुए प्रतिनिधियों की ऊँची शिक्षा पर तथा शासन के ऊँचे लक्ष्यों पर गर्व करते हैं, वहाँ यह कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है।'

टेम्पल महोदय ने यह बात ठीक ही कही थी। सन् १८८४ ई० तक विदेशों में इस संबंध में जितना काम हुआ था उतने काम का एक अंश भी हमारे देश में तब तक नहीं हो पाया था। सन् १८६६ ई० में टेम्पल महोदय के उद्योग से रेवरेन्ड एस० हिस्लप के लेखों का प्रकाशन हुआ। इन लेखों का संबंध मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत के आदिवासियों से था। १८६८ ई० में मिस फ्रेयर की कहानियों का एक संग्रह 'ओल्ड डेकन डेज' के नाम से निकला। सन् १८७१ ई० में डाल्टन महोदय ने 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बंगाल' प्रकाशित किया। उसी समय 'इंडियन एंटीक्वेरी' में बंगाल की लोक कथाओं का प्रकाशन डैमंड महोदय ने आरम्भ किया। सन् १८८३ ई० में रेवरेंड लाल बिहारी दे की पुस्तक 'फोक टेल्स आव बंगाल' प्रकाशित हुई। सन् १८८४ ई० में टेम्पल महोदय

की 'लीजेंड्स आव दी पंजाब' तीन भागों में प्रकाशित हुई। १८८४ ई० में श्रीमती एफ० ए० स्टील के सहयोग से टेम्पल महोदय ने 'अवेक स्टोरीज' नाम से कहानियों का संग्रह प्रकाशित किया। 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' के नाम से श्री नटेश शास्त्री की कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ। सन् १८९० ई० में श्री डबल्यू कुक ने 'नार्थ इंडियन नोट्स एंड क्वेरीज़' नाम का पत्र प्रकाशित किया था। थोड़े दिनों बाद कैम्बेल तथा नोलीज़ महोदय ने संयुक्त रूप से संथालों और काश्मीर की कहानियों का संग्रह करना शुरु किया। श्री आर० सी० मुखर्जी की 'इंडियन फोकलोर', श्रीमती डूकोर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेन्ड सी० स्वीनर्टन की 'रोमांटिक टेल्स फ्राम पंजाब' आदि से लोकवार्ता संबंधी पर्याप्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई। सन् १९०९ ई० में श्री जी० एच० बोम्पस ने रेवरेंड ओ० बौडिंग द्वारा संकलित संथाली कहानियों का अनुवाद प्रकाशित कराया। श्री एम० कुलक की 'बंगाली हाउस होल्ड टेल्स' तथा सुश्री शोभना देवी की 'ओरियंट पर्ल्स' पुस्तकें प्रकाशित हुई। श्री पार्थर का 'विलेज फोकटेल्स आव सीलोन' तीन भागों में प्रकाशित हुआ। 'कथा सरित्सागर' का अनुवाद टानी महोदय ने किया और इसका सम्पादन पेंजर महोदय ने किया। 'कथा सरित्सागर' के संबंध में इतना ही कह देना ही पर्याप्त होगा कि इसका स्थान लोक वार्ता में अत्यन्त महत्वपूर्ण और उच्च है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री विनय कुमार सरकार, शरत चन्द्र राय, ग्रियर्सन, रामास्वामी राजू, जी० आर० सुब्रह्मण्यम् पुंतुलु आदि कोड़ियों शोधकों और विद्वानों ने इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। मारिस ब्रूमफिल्ड, नार्मन ब्राउन, रूथार्टन, एम० वी० एमेन्यू जैसे अमेरिकन और शोकोलव जैसे रूसी विद्वानों ने लोक साहित्य के अध्ययन में मार्ग प्रदर्शन किया है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे विश्वविद्यालयों में लोक साहित्य में रुचि रखने वाले छात्रों को, इन महत्वपूर्ण पुस्तकों से पूरी सहायता मिल रही है।

ऊपर हमने जिन पुस्तकों की चर्चा की है वे सब अंग्रेजी में हैं। सच यह है कि भारत की विभिन्न भाषाओं में लोक वार्ता, लोक साहित्य अथवा लोक गीतों के संबंध में जो चेतना उत्पन्न हुई और जो जागृति आयी वह इन्हीं

कृतियों के कारण थी। देशी भाषाओं में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई उनमें से कुछ ये हैं (१) श्री मंसूरउद्दीन—'हारामणि' (बंगला) (२) श्री दिनेशचन्द्र सेन—मैमन सिंह गीतिका (बंगला) (३) श्री झवेर चन्द मेघाणी—'रढ़ियाली रात' ३ भाग (गुजराती) (४) श्री रणजीतराव मेहता 'लोकगीत' (गुजराती) (५) श्री नर्मदा शंकर लाल शंकर नागर 'स्त्रियों मा गवाता गीत', (गुजराती) (६) श्री संतराम—'पंजाबी गीत' (७) श्री मदनलाल वैश्य—'मारवाड़ी गीत माला' (८) श्री निहाल चन्द वर्मा—'मारवाड़ी गीत' (९) श्री खेताराम माली—'मारवाड़ी गीत संग्रह' (१०) श्री ताराचन्द्र ओझा—'मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह' आदि।

हिन्दी में श्री मन्नन द्विवेदी ने सर्व प्रथम 'सरवरिया' नाम की पुस्तक प्रकाशित की। लाला संतराम ने 'सरस्वती' में पंजाबी लोकगीत प्रकाशित कराए। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इस संबंध में जो परिश्रम और प्रयास किया उससे सारा हिन्दी समाज परिचित है। उनका 'ग्राम गीत' अमर हो चुका है। श्री सूर्य करण पारीक, डा० कन्हैयालाल सहल, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश', श्री नरोत्तम स्वामी, ठाकुर राम सिंह, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री श्याम चरण दूबे, श्री हर प्रसाद शर्मा, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, श्री श्याम परमार, श्री दुर्गा प्रसाद सिंह, श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव, श्री मार्कण्डेय, श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, श्री मन्मथराय, श्री चन्द्रभानु शर्मा, श्री रामस्वरूप योगी, श्री सत्यव्रत अवस्थी, श्री देवदत्त शास्त्री, श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव आदि लोक वार्ता और लोकगीतों के प्रेमियों और विद्वानों ने जो सत्प्रयास किए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी जैसी संस्थाओं तथा 'भोजपुरी,' 'राजस्थान', 'लोक वार्ता' आदि पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। ब्रज क्षेत्र में 'ब्रजसाहित्य मण्डल' ने सामूहिक उद्योग करके इस दिशा में महत्व-पूर्ण कार्य किया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी, डाक्टर वैरियर एलविन, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर उदय नारायण तिवारी, डाक्टर सत्येन्द्र, डाक्टर महादेव साहा आदि विद्वानों ने अपने अध्ययन और मार्ग-प्रदर्शन से जाने कितने छात्रों और स्नातकों को उत्साहित करके उन्हें

इस महत्वपूर्ण कार्य में लगाया है। इन आचार्यों की कृपा से पूरे लोक साहित्य का अध्ययन सम्पूर्णतः वैज्ञानिक होता जा रहा है। यह अत्यन्त शुभ लक्षण है।

अब तक इस क्षेत्र में जो कार्य हो चुका है, हम उसके लिए कृतज्ञ हैं और इस समय विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा कतिपय संस्थाओं और विद्वानों द्वारा जो प्रयास किये जा रहे हैं, हम उनका अभिनन्दन करते हैं। परन्तु जैसा कि हमने बराबर कहा है, अभी तो इस विराट, विशाल कार्य का श्रीगणेश भर हुआ है। हमारे भीतर अभी वह सहानुभूति और उदारता पूरी तरह अंकुरित नहीं हो पायी है जो लोक साहित्य तथा लोकगीतों के सच्चे अध्ययन की पहली शर्त है।

अथर्ववेद के मंत्र हैं—

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृषयः संवभुवुः!
या विभर्ति बहुधा प्राणदे जत् सानो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु!
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्य वर्त्तयन!
गवाम श्वानां वयसश्च विष्ठाभगंवर्च्चः पृथिवी नो दयातु!
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा!
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥

'हमारे प्यारे देश की चार दिशाएँ हैं। चारों दिशाओं में कृषि कर्म किया जाता है। यह कृषि कर्म अनेक प्रकार से इस देश के प्राणियों की रक्षा करता है। हमारी यह मातृभूमि हमको उत्मोत्तम पशुओं तथा अन्न की समृद्धि से युक्त करे। जिस पवित्र देश में उत्पन्न होकर हमारे पूर्वजों ने अद्भुत कार्य किए, जहाँ देवताओं ने असुरों को पराजित किया, जहाँ विविध प्रकार की गौ, अश्व एवं पक्षी उत्पन्न होते हैं, वह हमारी प्यारी जन्मभूमि हमें ऐश्वर्य एवं तेज प्रदान करे। जिस पुण्य प्रदेश में चारो ओर वनस्पतियों और वृक्षों की अनुपम छटा है, जो समूचे धन जन का पालन पोषण करने वाला है, उस पवित्र भूमि का, जो हमारी माता के समान है, हम सदा गुणानुवाद करते हैं।'

इन मंत्रों में जो कुछ कहा गया है वह हमारे लोक गीतों का मूल संदेश है। वेदों के युग से आज तक जो यह भाव धारा चली आयी है, उसको लोक गीतों में ही प्रश्रय मिला है।

एक अन्य वैदिक मंत्र है—

उपहूता इहगाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषुनः ।।
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादु सन्मुदः ।
अरिष्टाः सर्व पुरुषागृहानः सन्तु सर्वदा ।।

'हमारे इन प्यारे गृहों में दूध देने वाली गायें हैं, भेड़ें और बकरियाँ हैं। अन्न को अमृत तुल्य सुस्वादु बनाने वाले विविध पदार्थ हैं। प्रचुर धन वाले मित्र हमारे इन्हीं गृहों में आते रहते हैं। वे हंसी खुशी के साथ हमारे संग स्वादिष्ट भोजन करते हैं। हमारे गृहो ! तुम्हारे अन्दर रहने वाले समस्त प्राणी (पशु पत्ती भी) निरोग और अक्षीण रहें और उनका किसी प्रकार से भी ह्रास न हो।'

इस उद्धरण में जो कहा गया है वह हमारी आज की कामना का भी द्योतक है। परन्तु आज हमारा देश विपन्न है। उसके तन मन दोनों दुर्बल हैं। हमें यह स्थिति बदलनी है और अपने देश को धन धान्य से पूर्ण और अपने समाज को सुखी और समृद्ध बनाना है। हमें ऐसी स्थिति ला देनी है जिसमें वैदिक युग के वे सपने पूरे हो सकें जिन्हें हमारे ऋषियों ने देखा था और जो आज भी अधूरे हैं।

इस विजय अभियान में हमारे लोकगीतों का स्थान और सहयोग महत्व-पूर्ण होगा। इसलिए हमें अपने लोक गीतों का अध्ययन और उनकी व्याख्या अधिक सहानुभूति, उदारता और जाग्रत राष्ट्रीय चेतना के सहारे करनी होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी सांस्कृतिक चेतना जिस द्रुत गति से बढ़ी है और पश्चिमी सभ्यता का घटाटोप जिस तीव्रता के साथ छिन्न भिन्न हुआ है और अब भी होता जा रहा है उसे देख कर हमारा आत्मविश्वास बढ़ता है और अपने भविष्य के प्रति हम नित्य प्रति अधिकाधिक आश्वस्त होते जाते हैं।

हमारे लोक गीत, लोक जीवन के सारे तत्वों को उभारने वाले, उन पर प्रकाश डालने वाले, सीधे-सादे, सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं।

लोकगीत ऐसी वस्तु नहीं हैं जिनका अध्ययन लोक जीवन से अलग रह कर, बन्द कमरे में बैठ कर, किया जा सके। इनको समझने, इनका मूल्य पहिचानने, इनकी सही व्याख्या कर पाने के लिए हमें वहाँ जाना पड़ेगा, उस लोक में जाना पड़ेगा जहाँ 'अग्नि देव' भी जाने से इन्कार करते हैं। हमें वहाँ पूरी श्रद्धा, पूरी आस्था और पूरे विश्वास के साथ जाना पड़ेगा, क्योंकि हम वहीं उन गीतों में रम कर, उनके मूल तक पहुँच कर ही वह हीरा पा सकेंगे जो युगों युगों से हमारे समाज को ज्योति देता आया है और आगे भी देता रहेगा।

अगले पृष्ठों में जिन गीतों का अध्ययन किया गया है उन्हें पढ़ कर हमारे पाठकों को ग्राम गीतों, लोक गीतों के सच्चे संदेशों, सच्चे उद्देश्यों का कुछ आभास अवश्य मिल जाएगा। इन गीतों की व्याख्या करते समय हमने कोई नई बात कहने की कोशिश नहीं की क्योंकि लोक गीतों का अर्थ तो अत्यन्त सीधा और सरल होता ही है। हमने यहाँ श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संगृहीत 'ग्राम गीत', श्री कृष्णदेव उपाध्याय कृत 'भोजपुरी ग्रामगीत', श्री दुर्गाप्रसाद सिंह प्रणीत 'भोजपुरी गीत में करुण रस', श्री श्याम परमार कृत 'मालवी लोकगीत', श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'वेला फूले आधीरात', 'धरती गाती है' और 'बाजत आवे ढोल', श्री सूर्यकरण पारीक कृत 'राजस्थानी लोकगीत', श्री हरप्रसाद शर्मा कृत 'बुन्देलखण्डी लोक गीत' तथा अन्य पुस्तकों और पत्रिकाओं से गीतों को चुन कर उनमें से कुछ की व्याख्या की है। व्याख्या करते समय हमने सदैव इस बात का ध्यान रखा है कि अब तक विभिन्न गीतों के जो अनुवाद हो चुके हैं, उनसे अलग जाकर कोई सर्वथा नयी बात कहने की कोशिश न की जाय, बल्कि उनका सहारा लेकर ही, विभिन्न गीतों में छिपे सामाजिक तत्वों को उभार कर, उजागर करके सामने रखा जाय। फिर भी यदि हमारे पाठकों को कहीं कोई नयी वस्तु मिल जाय, नया तत्व हाथ लग जाय, अथवा नयी दृष्टि मिल जाय तो वे चौंके नहीं। वे विश्वास करें कि इन लोक गीतों में अगणित ऐसी बातें भरी हुई हैं, जो प्रकाश में आने के लिए बेचैन हो रही हैं।

यह सही है कि इस क्षेत्र में काम करने वाले समर्थ विद्वानों ने अब तक

पर्याप्त प्रयास किया है और उनका प्रयास बहुत अंशों तक सफल भी हुआ है। परन्तु संतोष करके बैठ रहने का समय अभी नहीं आया है। हमारे हिन्दी क्षेत्र के विभिन्न स्थानों में अभी अगणित बहुमूल्य लोकगीत बिखरे पड़े हैं। उनका संग्रह अधिक तेजी और चुस्ती के साथ होना चाहिए। यदि हमारे ये गीत हमारी सुस्ती के कारण खो गये, धूल में मिल गए, स्मृति-पटल से उतर गए, तो हम अपराधी ठहराये जायेंगे।

हमारे यहाँ लोकगीतों के संग्रह का काम तो थोड़ा बहुत हुआ है। गीतों के भावार्थ या शब्दार्थ भी दिए गए हैं। परन्तु उनका मूल्यांकन अभी तक पूरी तौर से नहीं हो पाया है. न उनकी सामाजिक व्याख्या ही ठीक तरह हो पायी है। अब इस कार्य में देर नहीं होनी चाहिए क्योंकि हमें यथाशीघ्र जाति, वर्ण, संस्कृति, समाज से चाल कर मूल मनुज को फिर से खोज निकालना है।[1]

'लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या' पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। जिस समय 'अमृत पत्रिका' में यह व्याख्या लेख-माला के रूप में प्रकाशित हो रही थी उस समय श्रद्धेय पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा था, "लोकगीतों पर आपकी लेखमाला बड़ी सुन्दर निकल रही है। आप बड़ी गहराई से समाज में व्याप्त संस्कृति को देख रहे हैं। मैं बड़े ध्यान से पढ़ता हूँ। मेरे 'ग्रामगीत' संग्रह का सच्चा लाभ आप ले रहे हैं; यही उसकी सार्थकता है।"[2] त्रिपाठी जी के इस पत्र से मेरा उत्साह बढ़ा और जब डाक्टर उदय नारायण तिवारी, डाक्टर महादेव साहा तथा अन्य विद्वान मित्रों ने कहा कि यह व्याख्या पुस्तक रूप में आ जानी चाहिये तो मेरा भी साहस हुआ और मैंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि फिर से तैयार की और भाई नर्मदेश्वर चतुर्वेदी की तत्परता से पुस्तक प्रकाशित भी हो गई।

मैंने गीतों की व्याख्या के पूर्व 'सिद्धान्त' का एक अध्याय दे दिया है। इससे पाठकों को लोकवार्ता तथा लोकगीतों से संबंधित कुछ भ्रमों को दूर करने में अवश्य सहायता मिलेगी। गीतों का अध्ययन समाप्त करके मैंने 'लोक-गीत संग्रह' का एक अध्याय और जोड़ दिया है। गीतों के चुनाव में किसी विशेष सिद्धान्त का विचार मैंने नहीं किया। पाठकों को चाहिए कि वे इनमें से

अपने प्रिय गीतों को चुन कर उनका अध्ययन करें और उनके मर्म तक पहुँचे। उन्हें इन गीतों में ऐसे तत्त्व मिलेंगे कि वे चमत्कृत हो जायेंगे। जिन मित्रों की पुस्तकों से मैंने ये गीत संगृहीत किये हैं, उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। उनकी क्यारियों से मैंने कुछ फूल चुन लेने का 'अपराध' किया है। यह 'अपराध' मैं लिखित रूप में स्वीकार करता हूँ।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट १ में संसार प्रसिद्ध विद्वान अकेदेमीशियन शोकोलव की अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक 'रशियन फोकलोर' के प्रथम अध्याय का भावार्थ दे दिया गया है। हमारे पाठक इसे 'सिद्धान्त' वाले अध्याय के पूरक के रूप में स्वीकार करेंगे। परिशिष्ट २ में मैंने लोक संस्कृति के अध्ययन के लिए 'लोक संस्कृति समाज' के निर्माण की माँग की है और तत्संबंधी योजना का एक प्रारूप भी दे दिया है। मेरा विश्वास है कि यदि सरकार और जनता दोनों आपस में सहयोग करें तो यह योजना सफल हो सकती है और सम्पूर्ण लोक संस्कृति का अध्ययन सम्भव हो सकता है। परिशिष्ट ३ के अन्तर्गत मैंने लोक-वार्ता से संबंधित साहित्य की एक सूची दे दी है। इस सूची के लिये मैं डाक्टर महादेव साहा, भाई श्याम परमार तथा श्री सुरेन्द्र पाल सिंह का कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक में ऐसे अनेक गीत हैं जिन्हें मैंने माई से सुना था। उसके आँसुओं से भींगे ये गीत मेरी आत्मा में बसे हुए हैं। सोचा था यह पुस्तक माई को ही भेंट करूँगा। पर पुस्तक उसके जीवनकाल में छप न सकी। गत २७ अक्तूबर १९५५ ई० को वह हम सबको छोड़ कर चली गयी। अब इस पुस्तक को देख कर किसकी आँखों में स्नेह के आँसू छलछला आयेंगे?

माई की यह देन अब उसी की पुण्य स्मृति में भेंट है।

२ डी, मिण्टोरोड,
इलाहाबाद
होली, १९५६ ई०

श्रीकृष्ण दास

सिद्धान्त

इस समय जब कि हमारे राष्ट्र का नव निर्माण हो रहा है और हमारे सांस्कृतिक जीवन का फिर से संस्कार हो रहा है यह उचित है कि हमारा ध्यान उन निधियों की ओर जाय जिन्हें हमने भुला दिया था, जिनकी हमने उपेक्षा की थी अथवा हीरा होते हुए भी जिन्हें हमने कांच का टुकड़ा समझकर फेंक दिया था। सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण हमारी चेतना कुंठित हो गयी थी, अपनी संस्कृति के विभिन्न अंगों की ओर से हमने मुँह मोड़ लिया था, पश्चिम की सभ्यता के चकाचौंध में हम अपनी मूल्यवान थातियों को अनदेखी करने लगे थे, जिन बातों पर हमें गर्व होना चाहिए था वे हमारी ग्लानि का कारण बन गयी थीं। हम साहित्य, कला और इतिहास को नीची निगाहों से देखने लगे थे। हमारा आत्मविश्वास खो गया था। हमारा स्वाभिमान मरने लगा था।

परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ होता गया त्यों-त्यों हमारी राष्ट्रीय चेतना भी बढ़ने लगी और हम धूल मिट्टी में सने अपने हीरों को धीरे-धीरे पहिचानने लगे। इसीलिये सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के बावजूद हमारा सब कुछ बिल्कुल मिट नहीं गया, नष्ट नहीं हो गया। यह सही है कि अपने इतिहास, साहित्य, कला आदि सम्बन्धी अनुसन्धानों में हमें विदेशी तत्वान्वेषियों, अनुसंधानकर्ताओं और विद्वानों से बहुत मदद मिली, परन्तु यह भी सही है कि उनमें से अनेक विद्वानों ने हमारे इतिहास की गलत व्याख्या की, हमारे साहित्य का मज़ाक उड़ाया और हमारी कलाओं को हीन और निम्न कोटि का बतलाया। हो सकता है कि इस प्रकार इन महानुभावों ने साम्राज्यवादी हितों को साधने का प्रयत्न किया हो, परन्तु इसका प्रभाव अच्छा ही हुआ। इससे हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान को ठेस लगी और हम समय रहते जाग गये। हम अपने इतिहास, साहित्य और कला से बरबस प्रेम करने लगे।

राष्ट्रीय नव जागरण और नव चेतना के फलस्वरूप तथा पाश्चात्य विज्ञान के सम्पर्क में आने के कारण हमारी मनोदशा बदली, हमारी रुचियों में परिवर्तन आया, हमारा इतिहास फिर से लिखा गया, उसकी व्याख्या में आमूल परिवर्तन हुआ और पहाड़ी चूहा शिवा जी छत्रपति शिवाजी बने और सन् १८५७ के सिपाही बगावत को प्रथम राष्ट्रीय युद्ध के रूप में देखा समझा गया। अब पूरे भारतीय साहित्य को ब्रिटेन की किसी एक लाइब्रेरी की एक आलमारी में रखने लायक कह सकना असम्भव हो गया था। संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का फिर से मूल्यांकन हुआ। हम उसका महत्व पहिचानने लगे। राजदरबारों से बहिष्कृत, विद्वानों तथा कवियों द्वारा उपेक्षित 'गिरा ग्राम्य' हिन्दी का राज मार्ग प्रशस्त होने लगा। हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन हुआ, उसका इतिहास लिखा गया और उसके राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने के सपने धीरे-धीरे पूरे होने लगे। यह बड़ी बात थी, बहुत बड़ी बात थी। इसी तरह अजन्ता, एलिफेन्टा, एलौरा, खजुराहो, सांची, सारनाथ, अर्बुदगिरि, तक्षशिला, नालन्दा आदि की ओर भी हमारा ध्यान गया। असंख्य मसजिदों, मन्दिरों की भव्यता और उत्कृष्टता ने हमें आकृष्ट किया। नृत्य, संगीत, अभिनय, रंगमंच—कभी जिनकी उपेक्षा करने में हम शान समझते थे, अब हमारे सांस्कृतिक जीवन का मूल आधार बन गये। यह सब हमारी जातीय जागरुकता, राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण था।

महत्वपूर्ण कार्य

अपने प्राचीन साहित्य का अनुसंधान करते समय हमारा ध्यान बरबस 'लोक साहित्य' की ओर गया। लोक साहित्य के साथ हमारा ध्यान लोक-कलाओं और लोक-नृत्य आदि की ओर भी स्वभावतः गया। राष्ट्रीय, पुनर्जागरण की ओर यह एक बड़ा कदम था। जब हमारे साहित्यसेवियों ने लोकगीतों को एकत्र करना आरम्भ किया, लोक गाथाओं को संग्रहीत करना शुरू किया, लोक कलाओं को देखा, परखा, समझा, लोक नृत्यों का अध्ययन किया तो वे अवाक् रह गये। इतनी बड़ी निधि की इतनी उपेक्षा, इतना अपमान! यह कैसे हुआ? क्यों हुआ? यह हमारी किस कुत्सित

मनोदशा का, किस मानसिक विकृति का, किस गुलामाना ज़ेहनीयत का परिचायक था? हमने इसका उत्तर ढूँढ़ा, हमने इसकी चुनौती स्वीकार की। यह हमारी बहुत बड़ी विजय थी। अब हम अपने को धीरे-धीरे पहिचानने लगे थे।

अपने को जानने पहिचानने की यह प्रक्रिया ही हमें लोक साहित्य और लोक कला की दिशा में ले गयी थी। कहना चाहिए कि यही आत्मान्वेषण अथवा आत्मानुसंधान की प्रेरणा हमें अपने मूल रूप को, मूल्यों को पहिचानने, समझने के लिये उकसाती रही।

पंतजी ने कभी कहा था—

आज मनुज को खोज निकालो
जाति वर्ण संस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से चालो।

इस मूल व्यक्ति को, सदियों की पराधीनता, रूढ़िवादिता, अशिक्षा, अज्ञान, उपेक्षा, अश्रद्धा और अनाचारों ने छिपा रक्खा था। उसे ढूँढ़ निकालने की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। 'सभ्यता संस्कृति से निर्वासित' भारतीय ग्राम जीवन की ओर हम मुड़े तो चमत्कृत होकर रह गये। उन्नीसवीं सदी के दूसरे पक्ष में ही अनेक विद्वानों का ध्यान इस ओर जाने लगा था और भारत तथा भारत के बाहर इस सम्बन्ध में अध्ययन, अनुसन्धान आरम्भ हो गया था। अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में जागरूक विद्वानों, नृशास्त्रवेत्ताओं, इतिहासज्ञों, साहित्य सेवियों, कवियों और आलोचकों ने लोक-साहित्य के बिखरे तत्वों को बटोरना और उनका अनुशीलन अध्ययन करना आरम्भ कर दिया था।

स्वयं हमारे देश में विदेशी तथा स्वदेशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया और सांस्कृतिक जीवन की इस धूलसनी कड़ी को फिर से चमका दिया। इन विद्वानों ने वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध तथा जैन और संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के साथ क्षेत्रीय बोलियों का भी अध्ययन किया और गम्भीर मनन, चिन्तन,

विश्लेषण के बाद इस पूरे साहित्य को छानकर लोक साहित्य की डोरियों का पता लगाने का प्रयास किया।

इस क्षेत्र में भारतीय विद्वानों ने भी बहुत काम किया और इस विषय पर पूरा प्रकाश डाला। हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, गढ़वाली, नेपाली, संथाली आदि लोकगीतों का संग्रह आरम्भ हुआ। हिन्दी की बोलियों, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखन्डी आदि में भी बहुत काम हुआ और अनेक विद्वानों ने अपने अनुसंधान और अनुशीलन के फलस्वरूप डाक्टरेट भी प्राप्त किया। विश्वविद्यालयों में जब इस विषय को मान्यता मिली और खोज तथा शोध का कार्य जब अधिक वैज्ञानिक ढंग से होने लगा तो विद्वानों और भाषा तथा साहित्य प्रेमियों और हमारे समाजिक नेताओं ने लोक साहित्य का महत्व समझा। अब तो यह स्थिति आ गयी है कि लोक साहित्य का ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई भी साहित्यकार अथवा साहित्य का विद्वान अपनी साधना को पूर्ण नहीं समझता।

लोक साहित्य की ओर हमारा ध्यान दिलाने वाले विद्वानों ने बड़ा महत्व पूर्ण कार्य किया इसमें कोई सन्देह नहीं। मगर कोरी विद्वत्ता के सहारे लोक साहित्य का सच्चा मूल्यांकन नहीं हो सकता विद्वता के साथ सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता होती है, वह सहानुभूति जो हमें इस लोक साहित्य के रस में डुबा दे, जो हमें इस योग्य बना दे कि हम भाषा सौष्ठव, व्याकरण तथा पिंगल की सीमाओं को लांघकर लोक साहित्य की आत्मा तक पहुँच सके, जो हमें पुरखों के जीवन पर गर्व करना सिखा दे, जो हमें ऐसी दृष्टि दे कि हम लोक साहित्य के माध्यम से अपने अतीत के सामाजिक जीवन की, आर्थिक संघर्ष की, सांस्कृतिक उत्थान-पतन की झांकी देख सकें, जो हममें आस्था, आत्म विश्वास और गौरव की भावना उत्पन्न कर सके। यह सहानुभूति विदेशी शासक श्रेणी के मित्रों और सहयोगियों में कहां मिल सकती थी ?

जब हमारे राष्ट्रीय संघर्ष की परिधि बढ़ी और देश के कोटि-कोटि कृषक उसके अविभाज्य हिस्सा बने तो हमारा ध्यान उनके जीवन की ओर

गया और उसी के साथ हम लोक साहित्य से भी परिचित हुए। हिन्दी क्षेत्र का ही उदाहरण लें। यह सही है कि इस क्षेत्र में काफी पहिले से काम होता रहा है, परन्तु हजारों मील की पैदल यात्रा करके, देश के विभिन्न भागों के किसानों से मिलकर उनके गीतों का संग्रह सबसे पहिले पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने किया। लोक साहित्य के अध्ययन की जो धारा रुक रुक कर धीरे धीरे बह रही थी, अब 'ग्राम गीत' के प्रकाशित होने के बाद बलवती महा-धारा बन गयी, अब उसकी गति को अवरुद्ध करना सम्भव नहीं था।

लोक साहित्य, लोक गीत, लोक नृत्य तथा लोक कला की ओर आकृष्ट होना, उनका पुनर्मूल्यांकन करना, उसके जीवित तत्वों से प्रेरणा लेना हमारी सदा गहरी होती हुयी राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक था। यह सही है कि जिस प्रकार संस्कृत के विद्वान प्राकृत अथवा अपभ्रंश को हेय दृष्टि से देखते थे और उसे शिष्ट साहित्य में स्थान देने से हिचकते थे, वैसे ही खड़ी बोली हिन्दी के साहित्यकार और विद्वान लोक साहित्य को नीची निगाह से देखते रहे हैं। शिष्ट साहित्य और ग्राम साहित्य का झगड़ा काफी पुराना है। गोस्वामी तुलसीदास को 'गिरा ग्राम्य' के कारण बड़ी कठि-नाइयाँ उठानी पड़ी थीं। तब से आज तक किसी न किसी रूप में शिष्ट और सुसंस्कृत साहित्य तथा ग्रामीण साहित्य का भेद चलता आ रहा है। सरकारी कार्यों, शिक्षालयों तथा नागरिक जीवन में शिष्ट साहित्य को ही स्थान मिलता रहा है। भाषा के अन्य दोषों के साथ 'ग्राम्य दोष' भी माना जाता है रहा है। फलतः अब भी अधिकतर विद्वान लोक साहित्य को अजायबघर की खूबसूरत चीजों की तरह ही देखते हैं। वे उसे मरी हुई वस्तु समझते हैं। वे उसे जीवित, प्रेरणा दायी साहित्य नहीं मानते। वे उसे क्षणिक मनोरंजन का साधन भर मानते हैं। वे उसे भारतीय जन जीवन के दर्पण के रूप में स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार हमारा शिष्ट समाज कृषक श्रमिक वर्ग को दया का पात्र मानता है और उसके साथ उपकार करना चाहता है, उसे उसका सहज प्राप्य नहीं देना चाहता, बल्कि उसके जन्म-सिद्ध अधिकारों से उसे वंचित रखना चाहता है, उसी प्रकार शिष्ट साहित्य में दखल रखने

वाला साहित्यकारों का, विद्वानों का समाज भी लोक साहित्य और लोक कला के प्रति दया भाव प्रदर्शित करता है। यह दुख की बात है। यह स्थिति अस्वाभाविक है। यह मंगल का मार्ग नहीं है।

स्वाधीनता का संघर्ष तो आत्मोपलब्धि का संघर्ष होता है और स्वाधीनता की प्राप्ति आत्मोपलब्धिका अत्यन्त ऊंचा सोपान। आत्मोपलब्धि की यह सामाजिक प्रक्रिया ही हमें जन जीवन की ओर आकृष्ट करती है। वही हमारा सच्चा स्रोत है, आधार है, हमारी प्रगति और चेतना का पहिला मील का पत्थर है। उसकी उपेक्षा करके, उसे हेय समझकर, उसका निरादर करके सच्चे अर्थ में शिष्ट साहित्य का सृजन हो नहीं सकता। जिस प्रकार जमीन से उखड़ा हुआ पौधा फल फूल नहीं सकता उसी प्रकार लोक साहित्य और जन जीवन की उपेक्षा करने वाला शिष्ट साहित्य भी समृद्ध और महान नहीं हो सकता। आज नहीं तो कल हमारे शिष्ट समाज को और शिष्ट साहित्य के सर्जकों को इस तथ्य के आगे सिर झुकाना पड़ेगा।

यह प्रक्रिया आरम्भ भी हो गयी है। ज्यों-ज्यों हमारा शिष्ट समाज विदेशी सभ्यता की मृगमरीचिका से मुक्त होता जा रहा है त्यों त्यों वह अपने जीवन मूल्यों के प्रति सजग होता जा रहा है। वह मुड़ कर अपने खेतों खलिहानों, नदी नालों, बन पर्वतों, किसान मजदूरों, हरिजन अन्त्यजों, एक शब्द में अशिष्ट, असंस्कृत लोगों की ओर देखने लगा है, उनके जीवन में, उनके साहित्य में, उनके गीतों नृत्यों, अभिनयों में उन तत्वों को ढूंढ़ने लगा है जिनके सहारे वे सहस्त्राब्दियों तक पीड़ित, शोषित, पददलित रहने पर भी जिन्दा रह सके हैं। मैं इस प्रक्रिया का स्वागत करता हूँ क्योंकि मैं इसे राष्ट्रीय पुनरोज्जीवन के क्रम में आवश्यक सोपान के रूप में देखता हूँ। अब लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन और सहानुभूति पूर्ण मूल्यांकन का समय आ गया है। हमारी राष्ट्रीय चेतना की यही मांग है, यही चुनौती है।

वैज्ञानिक अध्ययन

अब तक लोक साहित्य, विशेषतया लोक गीतों के संग्रह का ही काम अधिक मात्रा में हुआ है। इन संग्रहीत लोक गीतों के अध्ययन

में चार प्रणालियों का सहारा लिया गया। रसों की दृष्टि से लोक गीतों का अध्ययन बहुत प्रचलित प्रथा है। ऋतुओं के अनुसार लोक गीतों का विभाजन करके उनका अध्ययन किया गया है। तीज त्यौहारों, पूजा उत्सवों, विभिन्न संस्कारों के आधार पर भी इनका अध्ययन किया गया है। श्रम के आधार पर भी लोक गीतों को इस प्रकार बांटना अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। मगर प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार इन गीतों का अध्ययन करना किसी भी अर्थ में पूर्ण और पर्याप्त कहा जा सकता है? निवेदन है कि जब तक इन गीतों की व्याख्या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से नहीं की जाती तब तक इनका अध्ययन पूरा नहीं कहा जा सकता। भाषा विज्ञान वेत्ता, शब्दों की उधेड़ बुन में रह जाता है। रस शास्त्र का पंडित विभिन्न गीतों में करुणा, वीर, शृंगार आदि रसों को ढूंढ कर तृप्त हो लेता है। जाड़ा, गर्मी, बरसात के चिरपरिवर्तन शील काल संचरण को महत्व देने वाला व्यक्ति वियोग और संयोग के उहापोह में अपनी शक्ति समाप्त कर देता है। विभिन्न सामाजिक अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों को सुनकर अनेक लोक साहित्य प्रेमी इन्हीं के आधार पर लोक गीतों का विभाजन कर देते हैं। बोआई, निराई, कटाई, ओसाई और घर में गल्ला रखने की प्रक्रिया के देखने वाले विद्वान इन गीतों को इन्हीं कार्यों के आधार पर बांट देते हैं। परन्तु समस्त लोक जीवन को संचालित करने वाले जिन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक तत्वों पर इन लोक गीतों में प्रकाश डाला जाता है, जिन कठोर सच्चाइयों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया जाता है, जो सामाजिक और आर्थिक कुबड़ताएँ, विषमताएँ, अत्या-चार, अनाचार, चुनौतियाँ, संघर्ष और विजय की प्रक्रियाएँ इनके झीने आवरण के पीछे से झांकती रहती हैं उनकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं होता। फलतः हमारे अन्दर उनके प्रति सच्ची सहानुभूति नहीं जाग्रत हो पाती, हम उन गीतों के रचयिताओं की सच्ची मार्मिक पुकारों को सुन नहीं पाते, हम उन्हें ठीक ठीक समझ नहीं पाते, हम उनका समुचित मूल्यांकन नहीं कर पाते, हम उनके प्रति साधारण न्याय भी नहीं कर पाते।

जब हम लोक साहित्य अथवा लोक कला का अध्ययन करने लगते हैं तो स्वभावतः अनेक प्रश्न हमारे सामने आ जाते हैं। यदि हम लोक साहित्य अथवा लोक कला के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि इनका उपयोग आज के सर्वतोमुखी निर्माण में सम्यक् रूप से हो, तो हमें इन प्रश्नों का उत्तर भी ढूँढ़ना पड़ेगा।

जो प्रश्न हमारे सामने आते हैं वे इस प्रकार हैं (१) आज के वैज्ञानिक युग में, जब कि सामन्तवादी समाज व्यवस्था समाप्त हो रही है, लोक साहित्य की क्या उपयोगिता है? (२) लोक साहित्य का चर्चा करना और उसे अनावश्यक रूप से महत्व देना क्या प्रतिगामिता का चिह्न नहीं है? क्या इससे राष्ट्रीय एकता, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में बाधा नहीं पहुँचती? (३) लोक साहित्य और लोक कलाओं का भविष्य क्या है? (४) लोक शब्द का अर्थ क्या है? ग्राम साहित्य को लोक साहित्य क्यों कहा जाय? (५) इस युग में लोक साहित्य का अध्ययन क्यों शुरू हुआ? (६) क्या लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य और लोक कला तथा शिष्ट कला में कोई सम्बन्ध हो सकता है? (७) लोक साहित्य के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए? लोक साहित्य का अध्ययन किस प्रकार होना चाहिए? (८) क्या लोक साहित्य तथा लोक कला के अध्ययन से राष्ट्रीय नव निर्माण में कोई सहायता मिल सकती है? हम यहाँ इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

जैसा कि हम जानते हैं, लोक साहित्य तथा लोक कला की उपेक्षा सदैव, सभी युगों में, शासक श्रेणी द्वारा हुई है। शासक श्रेणी ने सदैव लोक साहित्य और लोक कला के गर्भ से उत्पन्न शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला को पश्रय दिया। परन्तु जनता ने सदैव लोक कला और लोक साहित्य को ही प्रश्रय दिया। वह इसी की भाषा और भाव भंगिमा समझती थी। इसी के माध्यम से अपने जीवन को, उसके संघर्षों को, उसके सुख दुख, आशा निराशा, जय पराजय की भावना को अभिव्यक्त करती रही।

यह एक विचित्र बात है कि प्रायः सभी विद्वान एक मत से स्वीकार करते हैं कि समस्त शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला की उत्पत्ति लोक साहित्य और लोक कला से हुई, परन्तु वे यह नहीं कहते कि शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला को जन्म देने के बाद भी लोक साहित्य नष्ट नहीं हो गया, लोक कला मर नहीं गयी, बल्कि वह जीवित रही, जन जीवन के संरक्षण में विकसित होती रही। ये लोग यह नहीं देखते कि लोक साहित्य और लोक कला का विकास क्रम कभी रुका नहीं, प्रत्येक युग में जन साधारण के सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति उसी के माध्यम से होती रही। ये विद्वान यह भी नहीं देखते कि प्रत्येक युग में शिष्ट साहित्य तथा कला का जो विकास हुआ, उसकी जो समृद्धि हुई उसमें लोक साहित्य और लोक कला का सदैव बहुत बड़ा हाथ रहा।

इस सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुयी हैं। सब से बड़ी भ्रान्ति यह है कि लोक कला अथवा लोक साहित्य किसी सुदूर अतीत की वस्तु है। वे उसे पुरानी मूर्तियों, शिला लेखों अथवा भग्न स्तूपों की कोटि में रखकर देखना और उसकी कीमत आँकना चाहते हैं। यह सही है कि हमें अनेक ऐसी प्राचीन लोक कलाएँ मिलती हैं, लोक साहित्य के अनेक ऐसे चिह्न मिलते हैं जो अति प्राचीन और अति समृद्ध हैं, जिनकी उत्कृष्टता पर हम चकित हो जाते हैं, जिनको देखकर हमें उनकी प्राचीनता पर सन्देह होने लगता है। फिर भी हमें यह समझना चाहिए कि युग प्रति युग हमारी लोक कलाओं में परिवर्तन और विकास होता रहा है। और, लोक साहित्य में भी परिवर्द्धन और परिष्कार होता रहा है। उसके रूप बदलते रहे हैं। वे विकसित होते रहे हैं, परन्तु वे सदैव जीवित रहे हैं। इसलिये लोक साहित्य और लोक कला को सुदूर अतीत का शानदार अवशेष समझना और उन्हें इसी रूप में स्वीकार करना सर्वथा गलत है।

जो लोग पुरानी खेतिहर सभ्यता को वापिस लाना चाहते हैं, जो लोग वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक प्रगति और नवीन सामाजिक व्यवस्था की ओर से आँखें बन्द करके पुराण पंथी ढंग से सोचते हैं, जो लोग आदि

सभ्यता को आधुनिक सभ्यता से ऊँची समझते हैं और समाज को वहीं पहुँचा देना चाहते हैं जहाँ से बढ़कर वह आज के स्तर तक पहुँचा है, उनकी बात हम नहीं करते। ये लोग लोक कला और लोक साहित्य के प्रति वही रुख रखते हैं जो हम सीधे सादे भोले बच्चों की ओर रखते हैं। वे लोक कला और लोक साहित्य की सहजता, सरलता, मिठास पर ही मुग्ध होकर रह जाते हैं। वे यह नहीं देखते कि उनके प्रतीकों में कितनी प्रौढ़ता है, नवीनता के प्रति उनमें कितना आग्रह, कितनी ममता है, उनमें मानव की मर्यादा के प्रति कितनी सजगता, जीवन के प्रति कितनी आस्था और सत्य के प्रति कितना प्रेम है।

रूप-सौष्ठव

लोक साहित्य और लोक कला के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह भी है कि वह भोंडा होता है, उसका कोई सुनिश्चित रूप रंग नहीं होता, वह असंस्कृत, बर्बरता पूर्ण, अशिष्ट और असुन्दर होता है। यह बात भी बहुत गलत है। प्राचीन युगों का राज समाज और उसके चाटुकार लोग लोक कला और लोक साहित्य की ओर यही रुख रखते थे। हमारे विदेशी शासक हमारे उत्कृष्टतम साहित्य और कला की ओर यही रुख रखते थे। आज भी नगरों में रहने वाला तथा कथित शिष्ट समाज हमारी लोक कलाओं और लोक साहित्य की ओर यही रुख रखता है। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में शोषण के आधार पर जो वर्ग शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेने में सफल हो गया, यदि वह शासितों, पददलितों, उपेक्षितों की कला और साहित्य को नीची निगाह से देखे तो यह स्वाभाविक ही है। कोल, भील, संथालों और आदिवासियों की कलाओं के प्रति शासक श्रेणियों और शिष्ट समाज का रुख क्या है? और, जब ये लोग इन पिछड़ी जातियों को सभ्य बनाने के लिए जाते हैं तो उन पर क्या गुजरती है, उनको कितनी पीड़ा होती है, उनके कला तत्व किस प्रकार धीरे धीरे नष्ट होते जाते हैं इसकी ओर कौन ध्यान देगा? उनकी राम कहानी कौन सुनेगा?

यदि यह मान लिया जाय कि जन साधारण भी उत्तम और उत्कृष्ट कला कृति प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि वह समाज में उच्चातिउच्च स्थान भी प्राप्त कर सकता है। परन्तु क्या हम यह स्वीकार करने के लिये तैयार हैं? हम इस युग में भी हरिजनों तथा अन्त्यजों के साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह यही साबित करता है कि हम यह मानने से इनकार करते हैं कि कविता, सङ्गीत, कला आदि किसी भी क्षेत्र में इनकी देन उतनी ही महत्वपूर्ण हो सकती है जितनी उच्च वर्ण वालों या तथाकथित कुलीनों की। कमाल यह है कि हमारे साहित्य में कबीर, दादू, पीपा आदि अगणित उदाहरण मौजूद हैं फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं और हम असलियत को नहीं देख पाते। सच तो यह है कि जब हम इन कोल, भील, संथालों और आदिवासियों का रहन सहन, नृत्य संगीत आदि देखते हैं, जब हम लोकगीतों की मधुर तानें सुनते हैं, जब हम अहीरों, चमारों, धोबियों का नाच देखते हैं, जब हम झूलों की पेंगों, जांतों और खेतों खलिहानों से उठती स्वर लहरियों को सुनते हैं तो हमें यह निश्चय करना मुश्किल पड़ जाता है कि अधिक सभ्य और सुसंस्कृत कौन है, ये तथा-कथित पिछड़े लोग, या हम तथाकथित स्वनाम धन्य नागरिक लोग! अस्तु।

लोक कला और लोक साहित्य की दुर्दशा इन तथाकथित, शिष्ट, सभ्य, सुपठित लोगों के हाथों से होती रहती है और वह दया और संरक्षण का पात्र बना रहा है। वह मनोरंजन का साधन बना रहा है, लोग उसका आनन्द लेते रहे हैं। परन्तु वे उससे प्रेरणा नहीं प्राप्त करते थे। यदि हम कहें कि हमारे रागों में जो कुछ है उसका आधार जनता द्वारा बनायी धुनें हैं, राग हैं तो कोई विश्वास न करेगा। यदि हम कहें कि जिस कथक और मणिपुरी नृत्य को हम आज शास्त्रीय कला का उत्कृष्ट नमूना कहते हैं कल तक उसकी गिनती लोक नृत्यों में होती थी तो अनेक विज्ञ लोग बुरा मान जायंगे। परन्तु ये बातें सच हैं। इन्हें सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है। दस-पंद्रह वर्ष पहिले तक मणिपुरी नृत्य को वही स्थान प्राप्त था जो हमारे

इन क्षेत्रों में अन्य साधारण नृत्यों को प्राप्त है। आज मणिपुरी नृत्य शास्त्रीय नृत्य की कोटि में आ गया है। यही हाल अन्य कलाओं का भी है। मोहेन्जोदाड़ो और हडप्पा से प्राप्त मिट्टी की मूरतों, बर्तनों आदि को देख लेने पर बाद के समय की मूर्ति कला आदि की कलई खुल जाती है। भाषा के क्षेत्र में भी यही बात सच है, काव्य के क्षेत्र में भी।

इस लिये लोक कला अथवा लोक साहित्य के सम्बन्ध में विचार करते समय न तो दया या उपकार भाव से काम लेना चाहिए और न उन्हें कुतूहल और सस्ते मनोरंजन का साधन मानना चाहिए। यह मानना चाहिए कि इनके पीछे गहरे और गम्भीर मानवीय मूल्य और मान छिपे हुए हैं। यह स्वीकार करना चाहिए कि लोक कला चिरपरिवर्तनशील, चिर विकास-शील है। जीवन की ही भांति उसकी गति भी अबाध रही है। उसमें सदैव जीवन के नए से नए तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता रही है। उसमें उच्च कोटि की कलात्मकता रही है। उसका बाह्यान्तर सुन्दर, आकर्षक, प्रेरणादायक रहा है।

लोक कला और लोक साहित्य के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह रही है कि इनका रचनाकार, सृष्टि कर्ता या निर्माता कोई एक व्यक्ति नहीं था, बल्कि इनका निर्माण सामूहिक प्रयास का फल है। यह बात भी बिल्कुल थोथी और निराधार है। निश्चित रूप से इन कलाकृतियों और लोक गीतों आदि के पीछे व्यक्तियों का हाथ रहा है। निश्चित रूप से, वे अपने समय में, अपने समाज में समादृत थे। परन्तु उन्होंने अपनी कला कृतियों के नीचे अपना नाम नहीं जोड़ा और उन्होंने अपनी कला कृति में सुधार, परिवर्द्धन अथवा परिष्कार करने से किसी को रोका नहीं। फलतः मूल रूप से व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी वह जन समाज की, पूरे लोक की रचना हो गयी।

हमारे समाज में प्रचलित हजारों बल्कि लाखों गीत होंगे। यदि पूरे देश में प्रचलित लोक गीत एकत्र किए जांय तो उनकी संख्या और उनकी उत्कृष्टता देखकर हम स्तम्भित रह जांयगे। तब हमें यह जान कर भी

विस्मय होगा कि इन गीतों के लेखकों का कोई पता नहीं ! यह भी पता नहीं कि ये कब लिखे गये। यह भी मालूम नहीं कि इनका आरम्भिक रूप क्या था, इनमें कौन से परिवर्तन किस समय, किस प्रकार हुए और वे किस प्रकार हमारे सामने अपने वर्तमान रूप में पहुँचे। यही हाल सङ्गीत का, वाद्यों का, नृत्यों का और अन्य कलाओं का भी है।

लोक कला और व्यक्तियों की कला

लोक कला और व्यक्तियों की कला के उद्भव और विकास में मूल अन्तर यही नहीं था कि एक का निर्माण समूह द्वारा हुआ, दूसरी का निर्माण व्यक्ति द्वारा। बल्कि इस अन्तर का कारण यह है कि एक समूह की आवश्यकताओं और प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रेरणाओं को अभिव्यक्त करती है। लोक कलाकार ने ऐसे कथानकों, विचारों और अन्य तत्वों का उपयोग किया जो उसे जनवादी परम्पराओं से प्राप्त हुए थे। लोक कलाकार ने उनका उपयोग करते समय उनमें विभिन्नता, विचित्रता, विशेषता, उत्पन्न की। ऐसा उसने समसामयिक आवश्यकताओं और अपनी प्रेरणाओं को ध्यान में रखकर, उनके आधार पर किया। लोक कलाकार की रचनाओं का मूल्य भी इसी आधार पर आंका गया कि वह उस समूह अथवा जाति की आवश्यकताओं और प्रेरणाओं की दृष्टि से खरी उतरती है कि नहीं, जिसमें उसने जन्म लिया, जिसके लिये उसने रचना प्रस्तुत की, जिसका वह अविभाज्य अंग है। इस प्रकार लोक कलाकार अपनी निजी प्रेरणाओं, विचारों, आदर्शों और कल्पनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के बजाय पूरे समाज के जीवन, चरित्र, स्वभाव, विचार, आदर्श आदि को चित्रित करने, अभिव्यक्त करने, रूप रंग देने में समर्थ हो सका। यह बात हम समस्त लोक गीतों, लोक संगीत, लोक कथाओं, लोक नाट्यों, लोक कलाओं में देख सकते हैं और हम शिष्ट साहित्य और शिष्ट कलाओं के मूल में भी यही बात आरम्भिक रूप में देख सकते हैं।

संत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर

साहित्य की परख', पुस्तक के 'सन्त काव्य की परम्परा' नामक अध्याय के अन्त में कुछ महत्व पूर्ण बातें कही हैं। चतुर्वेदी जी कहते हैं "सन्त काव्य की परम्परा तत्वतः उस काव्य रचना पद्धति की ओर संकेत करती है जो मानव समाज की मूल प्रवृत्तियों पर आश्रित है। वह किसी समय आपसे आप चल पड़ी थी और वह उसी रूप में विकसित भी होती गयी। वह उस काल से विद्यमान है जब कि भाषा के ऊपर किसी व्याकरण शास्त्र का नियंत्रण न था और न उसके काव्य रूप की व्यवस्था के लिये किन्हीं छन्दों, नियमों की ही सृष्टि हो पाई थी। स्वभावता स्वच्छन्द रूप में ही वह अग्रसर हुई थी, जिस कारण उस कविता को, काव्य सौष्ठव प्रदर्शित करने के लिए, किसी रस वा अलंकारादि सम्बन्धी शास्त्र की भी आवश्यकता नहीं थी। व्याकरण, पिंगल एवं काव्य कला, विषयक अन्य शास्त्रों की रचना क्रमशः पीछे होती गयी और उनके नियमों उपनियमों का अनुसरण करने वाली शास्त्रीय पद्धति की कविता की एक पृथक परम्परा भी चलने लगी और दोनों समानान्तर चलीं। किन्तु शिष्ट समाज अथवा सभ्य लोगों द्वारा अपनायी जाने के कारण दूसरी को क्रमशः अधिक योग दान मिलने लगा और स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करने के कारण पहिली का आदर सदा साधारण जन समाज तक ही सीमित रहता आया। पहिली की भी शृङ्खला कभी टूटी नहीं और वह अधिकतर अपने मौखिक रूप में जीवित रही। लिखित रूप में उसका केवल वही अंश पहिले संचित किया जा सका जिसमें या तो ज्ञान विज्ञान की गम्भीरता थी अथवा जिसे सर्व साधारण के प्रति उपदेश का भी रूप दिया गया। संसार के प्राचीन धार्मिक साहित्य अथवा काव्य मूलतः उक्त पहिली परम्परा के उदाहरणों में आते हैं और उन्हें लिखित रूप भी मिल गया है, किन्तु इस प्रकार की रचनाओं का एक बहुत बड़ा अंश अभी तक मौखिक रूप में भी विद्यमान है और उसे बहुधा लोक गीत के नाम अभिहित किया जाता है।

"उपर्युक्त प्रथम परम्परा प्रकृत काव्य की परम्परा है जहाँ द्वितीय कल्पनात्मक रचनाओं की प्रणाली है। अतएव प्रथम में जहाँ हमारी

आदिम मनोवृत्तियों का सरल और विशुद्ध रूप दीख पड़ता है वहाँ द्वितीय में बहुत कुछ कृत्रिमता का समावेश रहता है। प्रकृत काव्य एवं शिष्ट वा कलात्मक काव्य के बीच इस प्रकार का अन्तर देखकर ही संत काव्य को उक्त पहिली कोटि में रखने की प्रवृत्ति होती है। फिर यह काव्य प्रकृत-काव्य के उस वर्ग में आता नहीं जान पड़ता जिसे लोक गीत कहा करते हैं। कुछ आलोचकों की धारणा है कि 'हिन्दी में निर्गुण धारा की संज्ञा से अभिहित सम्पूर्ण साहित्य लोक गीतवर्ग का है।' और वे कतिपय कारणों की ओर लक्ष्य करते हुए यहाँ तक कह डालते हैं कि 'हमारा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी साहित्य की निर्गुण धारा लोक गीतों का ही विकसित रूप है'। किन्तु ऐसे लेखक लोक गीत की उन विशेषताओं की ओर कदाचित पूरा ध्यान नहीं देते जो उसे संत काव्य से भिन्न सिद्ध कर देती हैं। लोक गीत वस्तुतः किसी समाज विशेष के हृदय और मस्तिष्क की अभिव्यक्ति करता है और उसमें काव्य निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहा करता है, जहाँ काव्य स्वभावतः किसी संत की स्वानुभूति का निदर्शन करता है, जिस कारण प्रकृत काव्य का रूप धारण करता हुआ भी वह अपनी कर्तृप्रधानता एवं आत्माभिव्यंजना (Subjectivity and Selfexpression) की महत्वपूर्ण विशेषताओं का सर्वथा त्याग नहीं कर पाता। इसके सिवाय लोक गीत का माध्यम बहुधा अनुश्रुति और मौखिक परम्परा द्वारा उपलब्ध होता है और उसमें अधिकतर प्रेमपरक वा रसात्मक स्थलों का ही समावेश रहा करता है, जहाँ संत काव्य के लिये ये बातें आवश्यक नहीं हैं और इसमें बहुधा धार्मिकता का पुट भी मिल जाया करता है।

"संत काव्य की लोक प्रियता उसके काव्यत्व की प्रचुरता पर निर्भर नहीं। वह जन साधारण के अंग बने कवियों (वा क्रान्तिदर्शी व्यक्तियों) की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जन साधारण की भाषा है। उसमें साधारण जन-सुलभ प्रतीकों के ही प्रयोग हैं और वह जन जीवन को स्पर्श करता है। वह सभी प्रकार से जन काव्य कहलाने योग्य है जिस कारण उसकी परम्परा की छोरें अमित काल तक उपलभ्य समझी जा सकती हैं।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जिस प्रकार लोक गीतों और संत काव्य के मूल भूत अन्तर के सम्बन्ध में उपर्युक्त उदाहरण में प्रकाश डाला वह सर्वथा वैज्ञानिक और तर्क पूर्ण है। जो बात संत काव्य के सम्बन्ध में लागू है वही समस्त शिष्ट काव्य में लागू है। लोक गीत और शिष्ट काव्य का यह अन्तर समझ लेना आवश्यक है क्योंकि समस्त शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य में यह भेद सदैव से रहता चला आया है।

लोक साहित्य में मूल मानव बोलता है। साथ ही वह युग-युग में बदलती बोलियों को भी मुखरित करता है। उसकी व्यापकता में कमी नहीं आती। उसकी अनन्तता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है। इस साहित्य में भारतीय संस्कृति की आधार शिला लोक संस्कृति प्रतिबिम्बित होती रहती है। सच यह है कि समस्त लोक साहित्य विशेषतया इन लोक गीतों में भारत की आत्मा बोलती है।

इसके सम्बन्ध में महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज कहते हैं, "भारतीय संस्कृति में पौराणिक कथाओं, तीर्थाटन, व्रत, उत्सव और पर्वों की जो प्रणाली परम्परागत चली आ रही है, उसी से लोक संस्कृति का सम्पादन हुआ है। इस प्रशस्त प्रणाली ने भारतीय जीवन, भारतीय संस्कृति और भारत देश को प्राणवान एवं जाग्रत बनाए रखने में बड़ा योग दिया है। कैलास से कन्याकुमारी और परशुराम कुंड (आसाम) से सिन्धु तक की भाषा, रहन-सहन की विभिन्नता होते हुए भी तीर्थाटन प्रणाली देश की एकता को अविच्छिन्न बनाए हुए है। लोक गीत, लोक चित्र, लोकनृत्य, लोक अभिनय, और लोक चर्चाएँ सभी कथा प्रणाली से समुद्भूत हैं।" (कथा प्रणाली ही तो भावों के आदान-प्रदान की आरम्भिक प्रणाली थी! लोकगीतों ने धीरे-धीरे यही महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया।)

कविराज महोदय लोक संस्कृति और लोकेतर संस्कृति के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "लोक संस्कृति और लोकेतर में उतना ही अन्तर है जितना श्रद्धा और तर्क, सहज और सजावट में होता है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है, लोकेतर संस्कृति आग

उगलती हुई चिमनियों, हुँकार करती हुयी मशीनों और विद्युत बल्बों से प्रदीप्त नगरों में निवास करती है। लोक संस्कृति के उपासक या संरक्षक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें पढ़ते हैं। उनके हृदय सरोवर में श्रद्धा के फूल सदैव फूले रहते हैं। लोकेतर संस्कृति के उपासकों, संरक्षकों में धन, पद, शिक्षा का स्वाभिमान रहता है, उनके हृदय में तर्क की चिनगारी सुलगती रहती हैं। लोक-संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा भक्ति की प्राथमिकता रहती है। उसमें अविश्वास, तर्क का कोई स्थान नहीं रहता......लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अनन्त सलिला सरस्वती की भाँति जन जीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। वस्तुतः लोक संस्कृति एवं लोकेतर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। स्थान, काल, वातावरण की विभिन्नता से ही वह विभिन्न रूप धारण करता है। जैसे जल वास्तव में एक ही है परन्तु उसके बूंद नीम के वृक्ष में पड़कर कड़वाहट पैदा करते हैं और आम के वृक्ष में पड़कर वही रसाल बन जाते हैं। यह बीज लोक संस्कृति और भारत देश को जीवन्त बनाए हुए हैं। इसी लिए इसमें जीवन है, प्राणदस्पर्श और समन्वय के अनन्त स्रोत हैं।"

लोक गीतों की चुनौती

एक बात और भी विचार करने की है। हिन्दी के रीति कालीन कवियों को यदि हम ध्यान में रखें तो हमें दो धारायें साफ दिखाई देंगी। एक धारा उन कवियों की है जो सामाजिक उच्छृंखलता को भुलाने, उससे जान बचाने और उस पर पर्दा डालने के लिए या तो भक्ति मार्गी हो गए थे या घोर शृंगारिक। समाज की वस्तुस्थिति से मुँह मोड़कर वे भगवान की ओर या फिर नायिका और उसके रूप भेदों की ओर अभिमुख हो गए थे। दूसरी धारा उन कवियों की है जो इन कुघड़, अप्रिय सच्चाइयों की चुनौती को स्वीकार करने को तैयार थे। इस धारा के कवियों ने विभिन्न राजाओं, जमीदारों आदि की वीरता को उत्तेजित करना अपना धर्म समझा।

वे उनको उनके पुराने गौरव की याद दिलाते और धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए सर्वस्व स्वाहा करने की प्रेरणा भी देते।

परन्तु लक्ष्य करने की बात यह है कि इनकी सारी शक्ति इन शासकों को ही जाग्रत, सजग, कर्मठ बनाने में खर्च होती थी। जन साधारण को अनुप्राणित करने, सशक्त बनाने के लिए ये कवि अपनी वाणी को कष्ट नहीं देते थे। फलतः यदि राजा आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने में सफल रहा तो जनता का मनोबल भी बना रहता था। मगर यदि राजा हार गया तो जनता का मनोबल भी टूट जाता था, कमजोर हो जाता था। ऐसे संकट के समय जनता को अपना मनोबल कायम रखने के लिए लोकगीतों के अतिरिक्त और किस वस्तु का सहारा था? इस समय के लोकगीतों को यदि हम ध्यान पूर्वक पढ़ें तो हमको उस समय का पूरा चित्र ही नहीं मिल जाएगा बल्कि हमें यह जान कर सचमुच विस्मय होगा कि किस प्रकार इन गीतों ने हमारे लोक मानस को स्वस्थ और सबल रखा, किस प्रकार इन गीतों ने जनता की जुझारु मनोवृत्ति को बनाए रखने में मदद की। आखिर निम्नांकित पंक्तियाँ किस सच्चाई, किस दृढ़ता, किस आत्म विश्वास की घोषणा करती हैं—

छोटी मोटी दुहनी दुधै कै
बिना रे अगिनि बाफ लेइ, बलैया लेऊँ बीरन।
इहै दूध पियै बीरन मोरा,
भइया लड़ें मोगलवा के साथ, बलैया लेऊँ बीरन।

इतनी मार्मिक, इतनी व्यापक, इतनी चुनौतीपूर्ण पंक्तियां लोक गीतों के अतिरिक्त और कहां मिल सकती हैं? क्या इन पंक्तियों में उन समस्त बहिनों का विश्वास, आस्था और अपने 'बीरन' के लिए अपरिमित स्नेह और गर्व नहीं भरा है, जो उस समय आक्रांत, आतंकित, अरक्षित और असहाय थीं? सच यह है कि लोक गीतों के भीतर छिपे भावों की व्यापकता ही, इन गीतों की, तथाकथित शिष्ट गीतों से अलग, एक सत्ता स्थापित कर देती है।

एक अन्य विशेषता लोक साहित्य और लोक कला की यह है कि उसमें पुनरावृत्तियों, भिन्नताओं, क्षेत्र-विभाजनों के लिए सदैव दरवाजा खुला रहा है और खुला रहेगा। ऐसा क्यों ? लोक कलाकार अथवा लोक-गीतकार सदैव इस बात के लिए प्रस्तुत रहा है कि वह अपने को केवल कुछ विशिष्ट नियमों, रूढ़ियों अथवा मान्यताओं से न बांधे। वह समाज की आवश्यकताओं, उसकी सांस्कृतिक और बौद्धिक आकांक्षाओं, रुचियों, आदर्शों के अनुरूप अपने को सदैव बदलता, बनाता रहा है। फलतः उसकी उपयोगिता बढ़ती ही गयी, कम नहीं हुई। उसके विकास में स्थिरता नहीं आयी, गतिशीलता बनी रही। वह आनन्द का कारण और मनोरंजन का साधन, प्रेरणा का स्रोत और कर्तव्य परायणता का माध्यम बना रहा। हम अपनी लोक कलाओं और लोक गीतों में भौतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन तक की दौड़ को बराबर देखते हैं। कोल्हू के गीतों से मेले के गीतों तक, शृंगार रस से पूर्ण अभिनयों से कृष्ण और रामलीलाओं तक, युद्ध की चुनौतियों से भक्ति परक भजनों तक हम लोक मानस के इन कलाकारों और गायकों की पहुँच का प्रमाण पाते हैं। लोक कला और लोक साहित्य की व्यापकता का यही कारण है।

लोक गीतों में व्यक्त भावनाओं की सार्वभौमिकता के सम्बन्ध में विद्वानों ने बहुत कुछ कहा है। जिस प्रकार 'पंच तंत्र' की कहानियां अरब देशों और योरोपीय देशों की भाषाओं में अनूदित होती हुई इंगलैंड पहुँचीं, जिस प्रकार अजन्ता की चित्र कला लगभग उन्हीं शताब्दियों में गोबी के रेगिस्तानों और उत्तरी पश्चिमी चीन की गुफाओं तथा मन्दिरों में पहुँची, जिस प्रकार भारत की मूर्ति कला, नृत्य कला, अभिनय कला, ब्रह्म देश, मलय प्रदेश, इन्डोनीशिया, सायम आदि सुदूर देशों में पहुँची, जिस प्रकार महा-भारत कालीन नायकों की चर्चा अमेरिका तक पहुँची उसी प्रकार हर युग में हमारे लोक गीतों का सन्देश देश के भीतर के सारे प्रान्तों में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी पहुँचा।

लोक संस्कृति और लोककला उस मां की तरह है जिसकी गोद में

हमारा लालन पालन हुआ है। लोक गीत उसी मां की वाणी है। 'माता भूमौ पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की भावना को लेकर ही हमें उन गीतों के पास जाना चाहिए जिनमें पृथ्वी गाती है, प्रकृत गाती है, मनुष्य की आत्मा गाती है।

डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'छत्तीस गढ़ी लोक गीतों का परिचय' की भूमिका में लिखा है, "ग्राम गीतों का समस्त महत्व उनके काव्य सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है, एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन, जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई या गलत समझ ली गयी है। आर्य-आगमन के पूर्व बहुत ही समृद्ध आर्येतर सभ्यता भारतवर्ष में फैली हुयी थी, उसके साथ ही और भी बीसियों छोटी मोटी सभ्यताएं इस विशाल भू भाग में फैली हुयी थीं। आर्यों ने राजनीतिक रूप में तो भारतवर्ष को जीत लिया था, पर वे सांस्कृतिक रूप में पूर्ण रूप से यहाँ के पूर्व निवासियों से प्रभावित हो गए थे। यहाँ की मूल सभ्यता वैदिक सभ्यता से एक दम भिन्न थी। और, आज भी लोकाचार, स्त्री-आचार, पौराणिक परम्परा आदि के रूप में वर्तमान हैं। ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे और ग्राम गीतों की भांति सुन सुनकर याद किये जाते थे। सौभाग्य वश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्राम गीत अब भी 'श्रुति ही हैं, जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्राम गीतों द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। ईट पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम गीत का महत्व मोहेन्जोदाड़ो से कहीं अधिक है। मोहेन्जोदाड़ो सरीखे भग्न स्तूप ग्राम गीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं।"

डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक गीतों की प्राचीनता और उनके द्वारा लोक मानस के संस्कार के सम्बन्ध में जो बातें यहाँ कहीं है, वे अकाट्य हैं। जब से मानव समाज है तभी से लोक गीतों का भी इतिहास है। इतना ही नहीं। इन लोक गीतों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान

राल्फ विलियम्स ने एक महत्व पूर्ण बात कही है जिस पर अवश्य ध्यान देना होगा। आपका कथन है, "लोक गीत न पुराना होता है न नया। वह तो उस जंगली पेड़ की तरह होता है जिसकी जड़ें अतीत की गहराइयों में धुसी होती हैं, मगर जिसमें नित नयी शाखाएँ, नई पत्तियाँ, नए फल निकलते रहते हैं।"

विलियम्स महोदय ने जो बात यहाँ कही है वह स्वयं-प्रमाणित है, स्वयं-सिद्ध है। आखिर कोई कारण है कि हम मैथिल और महाराष्ट्रीय, पंजाबी और मालवी, भोजपुरी और राजस्थानी, अवधी और ब्रज लोक गीतों में इतना साम्य पाते हैं। जिस प्रकार लोक कथाओं के सम्बन्ध में प्रायः सभी विद्वानों का कथन है कि उनमें ऊपरी भेदों के बावजूद साम्य की अन्तर्धारा बहती रहती है, उसी प्रकार लोक गीतों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। हमारे लोक गीत हर युग, हर प्रदेश, हर जाति और हर समय के प्रहरी के रूप में रहे हैं। वे सदैव से लोक मानस के संस्कार कर्ता और जय-गायक रहे हैं। इस रूप में वे सदैव वन्दनीय रहे हैं और रहेंगे।

इस सम्बन्ध में एक और साक्षी देनी है। साक्षी है श्री ए० जी० शेरिफ़ आई० सी० यस० की। वह लोक गीतों के प्रेमी थे और श्री राम नरेश त्रिपाठी के मित्र थे। त्रिपाठी जी के साथ वह १९३४-३५ के जाड़ों में जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव गए थे। उन दिनों शेरिफ़ महोदय जौनपुर जिले के कलक्टर थे। कोइरीपुर त्रिपाठी जी का अपना गांव है। कोइरीपुर की अहीरिनों के मुँह से उन्होंने कई लोक गीत सुने। फिर उनका अनुवाद उन्होंने अंग्रेजी में किया। अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक की भूमिका में संग्रहीत लोक गीतों का परिचय देते हुए शेरिफ़ महोदय कहते हैं—

"......The metre is rough and ready, but the language itself (Eastern Hindi) is musical and expressive: it is a language which calls a spade a spade in the sense that there is one word for each material object, each action or each sentiment described, and that word is the right one, which is to

say, that is folk poetry and folk poetry at its best. The songs are natural and dramatic and abound in pathos and humour, in romance and tragedy. Again and again in reading them one is struck by resemblances to the folk-poetry of other countries. Now it is AnnieLawrie (before Burns improved her)-

"She is backit like the peacock, she is breistit like the swan" —except that the Indian Annie has a nose like a parrot's beak and fingers like bunches of bananas —which are just as beautiful no doubt. Or, we have what is almost a translation of that most dainty of German folk songs, "und schau ich him, so schanst du her; Das macht mein Herz so schwer, so schwer." in "Main Chitwat Tu Chitwat Nahin Rahi Rahi Ji Ghabrae," Or we hear an echo of "Edward, Edward," in the tragedy of the brother's murder, "Why does your brand sale drip wi' blind ?" to which the Indian Edward replied much as his Scotch prototype did, "I have killed roedeer."

इस उद्हरण में शेरिफ़ महोदय ने जिन लोक गीतों की तुलना विदेशी लोक गीतों से की है उनके कुछ अंश इस प्रकार हैं :

(१) जैसे आम केर फंकिया, जच्चा रानी नैन बनी।
अपने पिया कै दुलारी, जच्चा रानी खूब बनी।
मतवाली जच्चा रानी खूब बनी।
जैसे सुगवा के ठोरवा जच्चा रानी नाक बनी।
अलबेली जच्चा रानी खूब बनी।
जैसे केरा केर खंभिया, जच्चा रानी जांघ बनी।
अपने पिया कै सुहागिन, जच्चा रानी खूब बनी।
जैसा केरा केर छीमियाँ, जच्चा रानी अंगुली बनी।
मतवाली जच्चा रानी खूब बनी!
अलबेली जच्चा रानी खूब बनी।

(२) *चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।*
बहुत दिनन से तेरे दिखिबे कौ, मेरो जी ललचाय ॥
मैं चितवति तू चितवत नाहीं, रहि रहि जी घबड़ाय ॥
निपट निठुर निरमोही मोहन, मोहिं रहो तरसाय ॥
तेरी चितवन में चित्त लगा है, नेह सिरानो जाय ॥

(३) इस गीत में बताया गया है कि देवर अपने भाभी पर आसक्त था। इस लिए उसने अपने भाइ को मार डाला। घर पहुँचा तो भाभी उसकी भीगी जूती और रंगी तलवार से सब कुछ भांप गयी। उसने देवर से सच सच बात पूछी और वायदा किया कि वह उसे छोड़कर कहीं न जायगी। देवर ने सच बातें बता दीं। वह स्त्री बन में गयी और चिता तैयार कर देवर को आग लेने भेज दिया। एकान्त पाकर उसने निवेदन किया—

जौ तुम होउ स्वामी सच क बिअहुता
अंचरा अगिनियाँ लइ उठौ, मोरे रामा!
तब—अंचरा भभकि उठा सतिना भसम भई,
देवरा दूनौ हांथ मीजै, मोरे राम!

और, *देवर चिल्लाता रह गया—*

जौ हम जनेतेउँ भौजी दगवा कमाबिउ,
काहे क मरतेउँ सग भैया, मोरे राम!

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो भाव हमारे लोक गीतों में मिलते हैं, प्रायः वही भाव स्काटलैन्ड, इंगलैंड, जर्मनी आदि देशों के लोक गीतों में भी मिलते हैं। कहीं कहीं तो वाक्य के वाक्य एक दूसरे के अनुवाद सरीखे लगते हैं। यह भाव साम्य, विचार साम्य, दृष्टि साम्य आश्चर्यजनक है। परन्तु हम यदि मान लें कि सारे संसार के देशों का लोक मानस एक तरह से शुद्ध, निर्दोष, निश्छल और सरल है तो यह जान कर भी हैरानी न होगी की उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति में इतनी अधिक सरलता और समता कैसे होती है!

हम जिस समझ, चेतना, आग्रह और सहानुभूति के साथ लोक

गीतों का अध्ययन करना चाहते हैं उनको तर्क और विज्ञान सम्मत बनाने के लिये हमें इनके पीछे छिपे सामाजिक और आर्थिक तत्वों को ढूँढ़ना पड़ेगा। हमारे लोक गीतों में कहीं कजरारे मेघों का स्वागत किया गया है, कहीं खेती की हरियाली पर उल्लास प्रगट किया गया है, कहीं धरती माता और सूरज देवता तथा चन्दा मामा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी है, कहीं सरों-सरिताओं, वनों, पर्वतों की पूजा की गयी है, कहीं देवी देवताओं को मनौतियाँ मानी गयी हैं, कहीं संयोग और मिलन पर सुख तथा वियोग और विदाई पर दुख प्रकट किया गया है, कहीं पुत्र जन्म की खुशी है, कहीं बाँझपन पर विलाप है, कहीं कामिनी सुन्दरी का रसमय वर्णन है, कहीं सभा में ऊँची पगड़ी रखने वाले, चौड़ी छाती, सुडौल हाँथ पाँव वाले पति पर गर्व प्रकट किया गया है, कहीं सामाजिक और आर्थिक विषमताओं पर क्षोभ प्रकट किया गया है, कहीं अनमेल विवाह की खिल्ली उड़ाई गई है, कहीं बहिन का प्यार, कहीं भाई का बलिदान, कहीं ननद भौजाई के झगड़े, कहीं सास पतोहू के टन्टे, कहीं एकता का सुफल, कहीं धर्म और कर्त्तव्य पालन की बड़ाई, कहीं अधर्म और दुष्टता की भर्त्सना है। कुल मिलाकर हमें इन लोक गीतों में जीवन के प्रति बड़ा ही स्वस्थ, प्रकृत, सहज, पुष्ट दृष्टिकोण मिलता है। हरैलेपन, पलायनवाद, अतिशय भाग्यवाद के स्थान पर कर्मठता, सक्रियता, जुझारु मनोवृति और विजय प्राप्त करने का अदम्य उत्साह ही हमें इन लोक गीतों में मिलता है। बड़ी बात यह है कि शृङ्गार हो या वीर रस, प्रकृतिकी पूजा हो अथवा प्रकृति के अन्ध तत्वों से संघर्ष, जीवन का स्वागत हो या मौत से मुकाबिला, कहीं भी इन लोक गीतों में कमजोरी, अशक्तता, फीकापन, प्रभावहीनता नहीं है। पौरुष, उत्साह, लगन और जुझारुपन की कमी हम कहीं नहीं पाते। इसका कारण यह है कि इन गीतों के पात्र, सारे के सारे धरती के बेटे, बेटियाँ हैं। आतप वर्षा शीत सहकर, कड़ी धरती से सोना उगाने वाले लोग भी कहीं बेजान, अशक्त, फीके और प्रभावहीन हो सकते हैं? लोक गीत धरती के गीत हैं, धरती के बेटे बेटियों के गीत हैं!

यह सही है कि इन लोक गीतों में हम वर्ग संघर्ष की वह तीव्रता नहीं पाते जो हमें पूँजीवादी युग के संगठित मजदूरों के लोक गीतों में मिलती है, फिर भी आर्थिक और सामाजिक विषमता पर, क्रूरतम प्रहार तो हमें इन लोक गीतों के पद पद में मिलता है। अपने भाग्य को अपने हाँथ में लेकर जीने वाला किसान हल की मूँठ पकड़कर जीवन के, शृंगार के, समृद्धि के, संघर्ष और विजय के गीत गाता है। इन गीतों में हमारा लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन लोक गीतों के साथ धरती गाती है, आसमान गाता है, चांद तारे गाते हैं, बन पर्वत, नदी नद गाते हैं, प्रकृति के सारे तत्व गाते हैं, पूरा ग्रामीण समाज गा उठता है।

हमारे ग्राम गीत सामन्तवादी युग की देन हैं। आज वह सामन्त-वादी युग नहीं रहा। धीरे धीरे, द्रुतगति से बदलती आर्थिक व्यवस्था के साथ ग्रामीण जीवन में भी परिवर्तन आता जा रहा है। पुराने जीवन मूल्य भी धीरे धीरे बदलते जा रहे हैं और उनका स्थान नये जीवन मूल्य लेते जा रहे हैं। आज का युग पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का युग है और हमारी चेतना की यह मांग है कि यथाशीघ्र इस पूँजीवाद अर्थव्यवस्था का स्थान समाजवादी अर्थव्यवस्था ले ले। सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था से समाजवादी अर्थ व्यवस्था तक की दूरी लम्बी है। बीच में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का पड़ाव भी है। इस पृष्टि भूमि पर यदि हम अपने लोक गीतों को रखकर देखें तो हमें उनकी व्याख्या नये सिरे से करनी होगी और नयी आवश्यकताओं के अनुसार उनका उपयोग भी करना होगा। यह काम महत्व पूर्ण है।

इन गीतों से हमारा हाल का, सीधा, संस्कारगत और रागात्मक सम्बन्ध है। इनमें हमारे मन प्राण बसते हैं, अभिव्यक्त होते हैं, मुखर होते हैं, इनमें हम अपने पुरखों के चित्र देखते हैं, उनके मनोवेगों का दर्शन करते हैं, उनसे निकटता प्राप्त करते हैं। इसलिये हमारी दृष्टि में इनका मूल्य बहुत है। इन गीतों की उपेक्षा करना अब सम्भव नहीं। हमें उत्तराधिकार में मिली इस अमूल्य निधि पर गर्व है।

अगले पृष्ठों में लोकगीतों का अध्ययन करते समय हम उन सारे

तत्वों का दर्शन करेंगे जिनका चर्चा हमने यहाँ किया है। हम इस अध्ययन में रस लेंगे, उनसे प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उनका मूल्य और महत्व पहिचानेंगे।

हमने आरम्भ में लोक गीतों के सम्बन्ध में उठने वाले जिन प्रश्नों को सामने रखा था उनमें से प्रायः सभी का उत्तर दिया जा चुका है। अन्य अधिकारी विद्वान उसका उत्तर अधिक तर्क पूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से देंगे। मेरा निवेदन सिर्फ यह है अब हमें इन लोक गीतों की ओर अपना दृष्टिकोण सही और सहानुभूति पूर्ण बनाना चाहिए।

आज हमारा देश स्वतंत्र हो चुका है। हमारे देश का कृषक समाज और सर्व हारा वर्ग अब सुख और समृद्धि की ओर बढ़ रहा है। ऐसे अवसर पर उसे उसकी पुरानी थातियों की याद दिलाना और जो उसका है उसे उसके हाथों में सौंप देना आवश्यक है। यह सही है कि यहाँ की सामन्त-वादी प्रथाएँ नियमतः समाप्त हो गयी हैं, और धीरे-धीरे वे सत्यतः भी समाप्त हो जाएँगी। परन्तु सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था के समाप्त होने का यह अर्थ नहीं है कि यहाँ की कृषि सभ्यता लुप्त हो जायगी। मैं यह मानता हूँ कि निकट भविष्य में ही हमारा कृषक समाज उठेगा, उभरेगा और वह अपनी संस्कृति और सभ्यता के पुराने सूत्रों को ही फिर से नहीं बटोरेगा, बल्कि वह नयी आवश्यकताओं के अनुसार उनमें नए संस्कार करेगा, उनको नया रूप और स्वर भी देगा। कृषक समाज के अतिरिक्त श्रमिक समाज, सर्वहारा समाज, निम्नमध्यम श्रेणी कहलाने वाला समाज भी धीरे धीरे अपने खोये मूल्यों को पहिचानेगा। अपनी आर्थिक समृद्धि और सामा-जिक उन्नति के साथ साथ वह अपनी सांस्कृतिक उन्नति की ओर भी ध्यान देगा। उस समय उसे इन लोकगीतों और लोक कलाओं का ही एक मात्र आधार होगा।

इसलिये मैं मानता हूँ कि लोक गीतों, लोक साहित्य और लोक कलाओं की चर्चा करना, उन्हें पुनर्जीवित करना, उन्हें सामाजिक विकास-क्रम में आवश्यक स्थान देना प्रतिगामिता नहीं है, बल्कि प्रगतिशीलता का

सबसे बड़ा प्रमाण है। इससे राष्ट्रीय एकता और उसके विकास में बाधा नहीं पहुँचेगी, बल्कि इसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता का क्रम दृढ़ होगा। इसलिए हमें सावधानी और सहानुभूति और समझ के साथ इन लोकगीतों के अध्ययन में लगना चाहिए, इनके सन्देशों को उभारकर जन-समाज के सामने रखना चाहिए, इनके सच्चे मूल्यों और मानों को जानना चाहिए, इनकी भावधारा में मग्न होकर, इनकी लोल लहरियों के स्पर्श से अपने मन-प्राण को पवित्र और ओजमय बनाना चाहिए।

आज हमारे देश में चारों ओर प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, प्राचीन संगीत और कला आदि के सम्बन्ध में शोर उठ रहा है। हम इस शोर का, इस उत्साह का स्वागत करते हैं। सदियों की परतंत्रता के बाद हमारा देश स्वतंत्र हुआ है। वह अपनी खोई निधियों को पुनः प्राप्त करने और उनका मूल्य पहिचानने का प्रयत्न कर रहा है। आधुनिक जीवन को अधिकाधिक आकर्षक और स्फूर्तिपूर्ण बनाने के लिए वह प्राचीन कला साधनों का प्रयोग कर रहा है। यह लक्षण शुभ है। यह इस बात का उदाहरण है कि देश को अपने अतीत पर समुचित गर्व है और वह अतीत की सभी मूल्यवान निधियों का प्रयोग करके अपने वर्तमान तथा भविष्य को सुन्दर और समृद्ध बनाने के लिए कृत संकल्प है। मगर इस नवीन उत्साह का आधार क्या है? यदि इसका आधार प्रत्येक प्राचीन वस्तु के प्रति परम्परागत अन्धी श्रद्धा ही है तो हम निवेदन करेंगे कि यह श्रद्धा अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही अपनी कलानिधियों का मूल्यांकन करना चाहिए और उनमें से उन्हीं तत्वों को ग्रहण करना चाहिए जो जीवनप्रद हों, जो हमारे सामाजिक जीवन को पुष्ट कर सकें, समृद्ध और विकासशील बना सकें।

हमें लोक गीतों की व्याख्या इसी प्रकार और इन्हीं आदर्शों को ध्यान में रखकर करनी चाहिये। इस व्याख्या और मूल्यांकन का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने पाठकों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हमारे ये लोक गीत उनके हृदय की कोमलतम भाव-

नाओं को अभिव्यक्त करने में ही समर्थ न होंगे, बल्कि वे उनकी जययात्रा के उद्घोषक, उनकी प्रगति के गायक और उनके विकास के मंगलाचरण भी बन जाएंगे। ये गीत धरती के गीत हैं, जीवन के गीत हैं, संघर्ष और विजय के गीत हैं। इनके रूप बदलते रहे हैं, बदलते जाएंगे। परन्तु इनके स्वर नहीं बदल सकते, इनके सन्देशे शाश्वत और सनातन हैं क्योंकि इनके संदेशों में भारतीय मानवता के अबाध अटूट विकास क्रम का सजीव इतिहास प्रतिध्वनित होता है। आइए, हम इन्हें सुनें, इन्हें समझें, इनका मूल्य पहिचानें, इनके स्वर में अपना स्वर मिलाकर अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को अधिक आकर्षक, शक्तिशाली और गतिशील बनाएं।

अध्ययन

एक प्रसिद्ध लोक गीत इस प्रकार है—

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरिनियां त मन अति अनमनि।
धरतै चरन हरिनवां त हरिनि से पूंछई।
हरिनी, की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझिऊ।
नाहीं मोर चरहा झुरान, न पानी बिनु मुरझेउं।
हरिना, आज राजा जी के छट्ठी तुमहिं मारि डरिहैं।
मचियै बैठी कौसल्या रानी हरिनि अरज करइ।
रानी, मसवा त सिझहिं करहिया, खलरिया हमें देतेऊ।
पेड़वा से टंगतिऊँ खलरिया त हेरि फेरि देखतिऊँ।
रानी देखि देखि मन समुझउतिउँ जनुक हिरना जियतइँ।
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ।
हरिनि, खलरी क खझड़ी मिढ़उबइ त राम मोर खेलिहइं।
जब जब बाजै खझड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरइ।

हरे हरे घने पत्तों वाले ढाँक के नीचे अनमनी सी हिरणी खड़ी है। चरते चरते हिरण ने हिरणी को देखा तो उसने पूछा, "क्या तेरा चरागाह सूख गया या तुझे पानी नहीं मिला कि तू इस तरह उदास खड़ी है ?"

हरिणी ने कहा, "न मेरा चरागाह सूख गया है, न पानी की कमी के कारण मैं मुर्झा गयी हूँ। हे हिरण, आज राजा जी के यहाँ छठी का उत्सव है। आज वह तुम्हारा बध कर डालेंगे। यही सोचकर मैं उदास हूँ।"

इसके बाद हिरण मार डाला गया।

कौशल्या रानी मचिया पर बैठी हुवी हैं। उनके सामने हिरणी विनती कर रही, "हे रानी, मांस तो कड़ाही में सीझा जा रहा है। मैं उसके बारे में कुछ नहीं कह सकती। मगर एक भीख मांगती हूँ। आप मेरे हिरण का चमड़ा मुझे दे दें। मैं उसे पेड़ पर टाँग कर बार-बार देखती रहूँगी और अपने मन को यह समझा लूँगी कि मेरा हिरण मानो अभी जीवित है।"

मगर कठोर हृदय कौशल्या का हृदय न पिघला। उन्होंने टका सा जवाब दे दिया, "ऐ हिरणी, तुम अपने घर जाओ। मैं तुमको यह चमड़ा भी न दूँगी। मैं इस चमड़े से खँझड़ी मढ़ाऊँगी, जिसे मेरे राम खेलेंगे।"

जब-जब खँजड़ी बजती है तो उसकी आवाज़ सुनकर हिरणी चौंक-चौंक उठती है। वह ढांक के नीचे अपने हिरण को याद करती खड़ी रह जाती है।

यह एक सोहर है जो प्रायः प्रत्येक घर में छठी के दिन गाया जाता है। सोहर मांगलिक गीत होता है। यह गीत आनन्द उछाह का प्रतीक माना जाता है। यह गीत करुणा रस का सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ लोकगीत है और प्रायः हिन्दी के पूरे क्षेत्र में गाया जाता है। कौन ऐसा कठोर हृदय प्राणी होगा जो इस अभागिन हिरणी के साथ स्वयं भी आह न कर उठे? इस गीत को करुण रस का प्रतीक कहा जा सकता है।

परन्तु क्या इतना ही कह देने से हम इस परम लोक प्रिय गीत का पूरा मूल्यांकन कर लेते हैं? ये हिरण हिरणी क्या जन साधारण के प्रतीक नहीं हैं? इस लोक गीत की कौशल्या रानी क्या रामायण की कौशल्या से अलग अत्यन्त कठोर, निर्मम, स्वार्थी, गांव की ठकुराइन नहीं है; ऐसी ठकुराइन जिसे अपने आनन्द और उल्लास के आगे निरपराध, परवश, कमजोर प्रजाजन के दुख-सुख की कोई चिन्ता नहीं है? रानी कौशल्या के राज कुमार राम बड़े होने पर विधवा हिरणी के निरपराध पति के चमड़े की खँझड़ी बजावेंगे। कौशल्या की कोख धन्य होगी, उनका बेटा बड़ा

होगा, आनन्द मंगल मनायेगा। परन्तु अभागिनि हिरणी, निरपराध प्रजाजन का सौभाग्य सिन्दूर पुँछ जायगा। सदा सदा के लिये उसका सोहाग लुट जायगा, उसकी गोद खाली रह जायगी। शासक और शासित का, राजा और प्रजा का यह कैसा सम्बन्ध है? दोनों के हित और स्वार्थ इतने परस्पर विरोधी क्यों? परम्परा से यह गीत छठी के दिन गाया जाता है। ऐसा क्यों होता है? किस सामाजिक सच्चाई की याद ताजा रखने के लिये यह गीत गाया जाता है?

यदि हम इस गीत के पीछे छिपे सामाजिक सच्चाइयों और आपसी सम्बन्धों को अनदेखी कर देंगे तो हम इसे पूरी तरह कैसे समझ सकेंगे? इसका पूरा रस कैसे प्राप्त कर सकेंगे? सहृदय पाठक गीत के इस पहलू पर ज़रा गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे तो वे चमत्कृत होकर रह जाएंगे। यह गीत सामन्तवादी युग के शासक-शासित श्रेणी के आपसी सम्बन्ध पर जितनी रोशनी डालता है उतना अन्य कोई गीत नहीं डालता।

सुखिया दुखिया

एक दूसरा गीत लीजिये, यह भी सोहर है —

सुखिया दुखिया दोनों बहिनियां,
दोनों बधावा लै आयीं, हरे राजा बीरन।
सुखिया ले आई गुजहरा गोड़हरा,
दुखिया दूब कै पैंड़ा, हरे राजा बीरन।
सुखिया जे पूछे अपने बीरन से,
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन।
लेहु न बहिनी कोंछ भरि मोतिया,
सैंया चढ़न का घोड़ा, हरे राजा बीरन।
दुखिया जे पूछे अपने बीरन से,
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन।
लेहु न बहिनी कोंछ भर कोदौ,
वहै दूब का पैंड़ा, हरे मोरी बहिनी।

गउंवां गोइड़वा नघंही न पायी,
दुब्बन झरैं लाग मोती, हरे राजा बीरन!
कोठे चढ़ी जे भौजी पुकारै,
रूठी ननद घर लाओ, हरे मोरे राजा।

सुखिया और दुखिया दो बहिनें थीं। उनके भाई के लड़का हुआ था और उत्सव में सम्मिलित होने के लिये उसके पास बुलावा आया था। दोनों बहिनें वहाँ पहुँचीं। सुखिया अपने साथ बच्चे के लिये गहने कपड़े लायी थी। भाई भौजाई को इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई। सुखिया को उन्होंने आदर पूर्वक रखा और जाते समय उसे कोंछ भर मोती दिया तथा उसके पति के चढ़ने के लिये एक घोड़ा भी दिया। सुखिया बाजे गाजे के साथ विदा हुई। दुखिया बहिन गरीब थी। वह तो अपने आंचल में सिर्फ दूब लेती आयी थी। उस गरीब बहिन की वहाँ क्या कदर होती? जब उसने लौटने की इजाज़त माँगी तो उसके भाई ने उसके आंचल में कोदों और दूब डाल दिया। भाई से यह विदाई पाकर दुखिया बहिन अपने घर की ओर चली। परन्तु वह गाँव की हद से बाहर भी न निकल पायी थी कि उसके फटे आँचल से मोती झड़ने लगे। उसकी भौजाई छत पर चढ़कर उसका जाना देख रही थी। वह पुकार उठी, "मेरी ननद रूठ कर जा रही है। उसे मना कर वापिस लाओ।"

इस कथानक को ध्यान से पढ़ने पर इस गीत का सन्देश साफ़ समझ में आ जाता है। श्री राम नरेश त्रिपाठी ने कहा है, "दुखिया बहिन गरीब घर में ब्याही थी। भाई के बालक को देने को उसके पास कुछ नहीं था। प्रेम विवश वह थोड़ी सी घास लेकर आयी थी। भाई ने प्रेम का कुछ मूल्य नहीं आंका। केवल गहने और घास का मुकाबिला किया। उसने दोनों को उनकी लायी हुयी चीजों के अनुसार बदला देकर विदा किया। पर सुखिया स्वार्थ वश आयी थी। उसके स्वार्थ को दुखिया के विशुद्ध प्रेम से नीचा दिखाने के लिये ही यह रूपक बाँधा गया है। घास से मोती झड़ते देखकर बहू का स्वार्थ फिर प्रबल होता है। दुखिया

तिरस्कृत होकर गयी थी। अब इसकी ग्लानि बहू को हुयी। इस प्रकार स्वार्थ का नृत्य घर घर में हो रहा है। पर शुद्ध प्रेम और चीज़ है। वह घास में मोती होकर झड़ता है।"

इस लोक गीत का रचयिता इतना सजग तो था ही कि वह यह साफ़ देख रहा था कि पैसे की वेदी पर किस प्रकार भाई बहिन का स्नेह सम्बन्ध भी बलिदान हो जाता है। भाई, बहिन, माता, पिता, नातेदार-रिश्तेदार, सगे सम्बन्धी, समाज के सारे प्राणी, किस सूत्र से एक दूसरे के साथ बंधे हैं? स्नेह के सारे सम्बन्ध किस चट्टान से टकरा कर चूर हो जाते हैं? हमारी नैतिकता के सारे आदर्श किस भँवर में फंस कर टूट बिखर जाते हैं? इस लोक गीत के रचयिता ने इन तथ्यों को जान लिया था। घास भरे-आँचल से मोती का झड़ना आखिर किस सच्चाई को उजागर करता है?

नारी की मर्यादा

सोहर में ही एक गीत है जिसमें एक बाँझ स्त्री घर से निर्वासित होने पर शेरनी के पास जाती है और शरण माँगती है। परन्तु शेरनी उसे शरण देने की हिम्मत नहीं करती क्योंकि उसे डर है कि कहीं उस बाँझ स्त्री के सम्पर्क में आकर वह स्वयं न बांझ हो जाय। वह नागिन के पास शरण मांगने जाती है। वहां भी उसे टका सा जवाब मिलता है। अन्त में वह धरती माता की शरण में जाती है। मगर सबको शरण देने वाली धरती माता भी उससे विमुख हो जाती है। अर्थात् वह बांझ स्त्री अपने बांझपन के कारण कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं पा सकती।

इस गीत का उद्देश्य क्या है? इसका सन्देश क्या है? क्या यह सफल मातृत्व में ही नारी जीवन की सार्थकता देखने का प्रयत्न नहीं है? एक ओर जहां यह गीत स्त्रियों के बांझपन की भर्त्सना करता है, वहीं दूसरी ओर वह उनकी कोख को भरा पूरा देखना चाहता है। वह परिवार भी क्या जो बच्चों की किलकारियों से गूंजता न रहता हो? वह स्त्री भी क्या जो अपने आंचल के तले सूनेपन को छिपाये उसांसे लेती जिन्दगी काट

रही हो? परिवार नियोजन के हामी लोग चाहे इस गीत को आज बेकार मान लें, परन्तु कोई सोवियत रूस तथा अन्य ऐसे देशों की नारी से पूछे, जहाँ आज भी सफल मातृत्व के लिये 'मदर हुड' के तमगे बँटा करते हैं, कि यह गीत कैसा है? इसका सन्देश क्या है?

सोहर में ही एक गीत है सीता जी के दूसरी बार बनगमन के सम्बन्ध में। यह गीत विचित्र है। (इसकी पूरी व्याख्या आगे की जायगी)। इसमें वे सारी मान्यताएं तोड़ दी गयी हैं जो कि बाल्मीकि अथवा तुलसी के राम सीता के सम्बन्ध में स्वीकृत थीं। इस गीत के सीता और राम मानव हैं, बिल्कुल हमारे जैसे। उनकी मानसिक स्थितियाँ अथवा अवस्थाएं भी बिल्कुल वैसी ही हैं। वे हमारे जाने पहिचाने स्वजन हैं। लोक गीताकार ने उनको इतना स्वाभाविक, मानवीय, सहज चित्रित करके लोक मानस की स्वस्थता का परिचय दिया है। ये पात्र हमारे परिवार के प्राणी बन गये हैं।

इस गीत के दो अंश देखिए (१) सीता को बन से वापिस लाने में जब लक्ष्मण और वशिष्ठ असफल हो गए तो स्वयं राम गये। वहाँ उन्होंने दो बच्चों को गुल्ली डन्डा खेलते देखा। राम ने पूछा, "बच्चो, तुम किसके पुत्र हो, किसके पौत्र हो, किसके भतीजे हो, किस माता की कोख तुम्हारे जन्म से शीतल हुई है?" तो बच्चों ने जवाब दिया, "हम लक्ष्मण के भतीजे, राजा जनक के नाती, और सीता माता के बेटे हैं। पिता का नाम हमें नहीं मालूम।" रामचन्द्र बचों की यह बात सुनकर अवाक् रह गए और फलत—

"तरर तरर चुवै आंसू, पटुकवन पोंछहि हो।"

(२) राम आगे बढ़कर सीता के पास पहुँचते हैं। सद्यस्नाता सीता वृक्ष के नीचे बैठकर बाल सुखवा रही हैं। राम पीछे जाकर खड़े हो गये और बोले, "सीता, चलकर अयोध्या को बसाओ, तुम्हारे बिना जग अन्धकारमय हो गया है, जीवन निरर्थक हो गया है।" धरती की बेटी सीता ने अयोध्या के राजा राम को केवल एक बार देखा, वह कुछ बोली नहीं। धरती की बेटी धरती की गोद में समा गयी।

यदि इस पूरे लोकगीत को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो आँखों के सामने उस समाज का चित्र खिंच जाता है जिसका प्रत्येक प्राणी सजीव और प्रकृत है, स्वाभिमानी और सत्यनिष्ठ है, अपने कर्त्तव्य के साथ अधिकारों से भी परिचित है। इस लोक गीत की सीता निश्चय ही हमारे घरों की अत्यन्त स्वाभिमानिनी मनस्विनी बेटी है।

बाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण जी के मुख से यह श्लोक सुनकर कि :

नाहं जानामि केयुरे, नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरेत्वभि जानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्—

कौन ऐसा भारतीय होगा जो गर्व से सिर ऊँचा न कर ले ? तुलसी कृत रामायण में भी ऐसे शानदार स्थल यहाँ वहाँ देखने को मिलते हैं।

बड़ी भाभी को मां का स्थान देना हमारी संस्कृति का एक अंग है। इस तत्व को प्रत्येक भारतीय पहिचानता है। लोक मानस में भी इस सम्बन्ध को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

एक लोक गीत में सीता जी लक्ष्मण से कहती हैं कि, "राम तो हैं नहीं। अब मैं क्या करूँ ? किसके लिये सेज सजाऊँ, किसकी सेज पर फूल बिखेरूँ, किसकी सेवा सुश्रूषा करके अपना दुख भूलूँ ?"

लक्ष्मण ने उत्तर में कहा, "आप मेरी सेज सजावें, उस पर फूल बिखेरें, मेरी सेवा करके अपना दुख भूलने की कोशिश करें।"

सीता ने कहा, "जिस मुँह से मैंने तुमको 'लक्ष्मण' कह कर पुकारा, उसी मुँह से तुमको पति कैसे कहूँगी ?"

लक्ष्मण तमक उठे। आवेश में आकर उन्होंने कहा, "भाभी, ऐसे पाप की बात मुँह से मत निकालो। मैं तुमको माता कौशल्या की तरह समझता हूँ। मैं पिता दशरथ की शपथ खाकर कहता हूँ, मैं राम का माथा छूकर कहता हूँ, गंगा जी में मेरा डुबकी लगाना व्यर्थ जाय, जो तुम्हें मैं अपनी स्त्री कहूँ।"

इस गीत में किस आदर्श की स्थापना की गयी है ? महान मर्यादा-वादी तुलसीदास की तरह क्या इस लोक गीत का अनाम गायक समाज

के सामने आदर्श देवर-भाभी का सम्बन्ध स्थापित करने में सफल नहीं हुआ ? और इस प्रकार क्या वह बाल्मीकि की परम्परा का महान विचारक, समाज हित चिंतक कवि नहीं गिना जाएगा ? क्या यह प्रसिद्ध लोक गीत सचमुच हमारे लोक मानस की स्वस्थता की गारन्टी नहीं है, उसकी पवित्रता का प्रमाण नहीं है ?

मेले का एक प्रसिद्ध गीत है :—

धै देत्यो राम हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा दियना बरतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो अंधेर, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा जेवना बनतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो भूख, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा गेडुंवा घुंटतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो पियास, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा बीड़वा कुँचतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो अमलिया, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा सेजिया लगतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो नींद, हमारे मन धीरजा।

इस गीत में किस मुक्ति और निर्वाण की कामना की गयी है ? कौन सा आध्यात्मवाद छिपा हुआ है ? हमारे गाँवों के मेले किसी पर्व पर लगते है, किसी देवी देवता की पूजा के अवसर पर संगठित होते हैं। इन मेलों में हजारों लाखों प्राणी भाग लेते हैं। परिवार के परिवार अपना घर बार छोड़ कर इनमें सम्मिलित होने चले आते हैं।

जहाँ ये मेले लगते है वहाँ बाजारें लगती हैं। अस्थायी रूप से मेले क्रय-विक्रय, खेल-तमाशों और आनन्दोल्लास के केन्द्र बन जाते हैं। घर गृहस्थी के चक्कर में पिसने वाले प्राणियों को कुछ समय के लिए इन मेलों में मुक्त वातावरण मिलता है। लड़के, लड़कियाँ, बालक, बृद्ध, स्त्री, पुरुष,

सभी कुछ क्षणों के लिए इन मेलों की रेला-पेली, व्यस्तता, बहुरंगीपन और अन्य आकर्षणों में अपने जीवन के दुख-सुख को भूल जाते हैं।

परन्तु इन मेलों का मूल आधार किसी देवी-देवता की पूजा अर्चना ही होता है। ये किसी धार्मिक तिथि विशेष पर ही लगते हैं। इन मेलों का मूख्य आकर्षण होता है भयातुर, निराश, हारे, थके मानवों की अपने आराध्य से प्राप्त वर के सहारे फिर से आशा, आत्म विश्वास, संतोष और सुख प्राप्त करने की कामना।

मेलों में भाग लेने वाली स्त्रियाँ जुट की जुट गीत गाती हुयीं स्नान पूजा को जाती हैं। ऊपर जिस गीत को हमने उद्धृत किया है वह इसी अवसर का अत्यन्त लोक प्रिय गीत है।

गीत में ईश्वर से यही माँग की गयी है कि वह उनके मन में धीरज धरावे। क्यों ? इसलिये कि उनका मन व्याकुल है। वे उद्भ्रान्त और चकित है समाज की विषमता देखकर। सबके महलों में दीपक जगमगा रहे हैं। मगर उनके यहाँ निपट घोर अंधकार का साम्राज्य है। सबके महलों में सुस्वादु, भोजन बनते हैं, मगर उनके यहाँ भूख का ताण्डव होता है। सबके महलों में सुराही का शीतल जल पिया जाता है, मगर उनके घरों में लोग प्यासे के प्यासे रह जाते हैं। सबके महलों में पान के बीड़े चबाए जाते हैं, ओठों की लाली गहरी होती है, मगर इनके घर वह भी अलभ्य है। सबके महलों में सुन्दर, सुसज्जित फूलों से लदे सेज बिछते हैं, लेकिन इनके घरों में टूटी चारपायी भी मुयस्सर नहीं।

इस लिए इनकी माँग है कि इनके मन में धैर्य हो, ईर्ष्या, द्वेष, डाह न हो। वे दीपक की माँग नहीं करतीं, केवल यह चाहती है कि उनके घरों का अन्धेरा किसी प्रकार दूर हो जाय। दूसरे के घरों में पकते सुस्वादु भोजन को देखकर वे यह नहीं माँग करतीं कि उनके घरों में भी वैसा ही भोजन बनने लगे, वे सिर्फ यह चाहती हैं कि किसी प्रकार उनकी भूख ही हर ली जाती, ऐसा कुछ होता कि उनको भूख ही न लगती। दूसरे के महलों में ठंडा पानी देखकर वह यह माँग नहीं करतीं कि उनके घरों में

भी सुराहियाँ हों और वे उनका ठंडा पानी पीने लगें। वे चाहती हैं कि प्रभु उनकी प्यास ही हर लेता। दूसरे के महलों में पान के बीड़े लगते हैं, सभी लोग उन बीड़ों को शौक से खाते हैं; मगर ये स्त्रियाँ केवल यह चाहती हैं कि किसी प्रकार पान खाने की उनकी आदत (अमल) ही छूट जाती। दूसरों के महलों में सुन्दर सेज लगते हैं, परन्तु वे अब यह आशा छोड़ चुकी हैं कि उनके जीवन में सुख-शृंगार का, आनन्द-वैभव का ऐसा सुअवसर फिर आ सकता है; उनकी कामना केवल यह है कि प्रभु उनकी नींद ही हर लेता, न नींद आती, न सुन्दर सेज की याद आती !

इस गीत में जिस सामाजिक वैषम्य का चित्र उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। वह तो आप ही आप उजागर और स्पष्ट होकर सामने आ गया है। लक्ष्य करने की बात यह है कि ये स्त्रियाँ उन सारे साधनों, उपादानों और वस्तुओं को पाने की आशा ही छोड़ चुकी हैं जिनके मिलने से जीवन सुखी सम्पन्न और जीने लायक बनता है।

उनका जीवन संतुष्ट नहीं, असन्तुष्ट है। उनमें अपने जीवन को अधिक सुखी और समृद्ध बनाने की मूल भावना थी, परन्तु वह इतनी बुरी तरह कुचली जा चुकी है कि अब उसके जागने की सम्भावना नहीं रही। वे अपने को घोरनिराशा, पराजय और परवशता का शिकार समझती हैं। यहाँ तक कि अब वे भूख मिटाने के लिए भोजन की माँग नहीं करतीं, वे भूख ही को मिटाने की माँग करती हैं; वे ठंडे पानी की माँग नहीं करतीं, वे प्यास के ही सदा सर्वदा के मिट जाने की माँग करती हैं; वे पान की माँग नहीं करतीं, वे तो यह चाहती है कि उनका यह अमल ही समाप्त हो जाय जिससे पान की कमी महसूस न हो; वे सुन्दर सेज की कामना नहीं करतीं, वे बस यही प्रार्थना करती हैं कि प्रभु उनकी नींद ही सदैव के लिये हर ले।

कोई भी मनोवैज्ञानिक सरलता पूर्वक यह बता देगा कि जब मानव मन इतना उदासीन, विरक्त और पराजित हो जाता है, तो उसे धीरज रखने,

सब कुछ सहते जाने, विद्रोह न करने, विषमता और अत्याचारों को भाग्य का लेख और विधि का विधान मान लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता। धीरज धरने की मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव तभी होता है जब कोई अन्य उपाय शेष नहीं रह जाता।

कैदी जब तौके-गुलाकी को ही अपना गहना समझने लगे, जब जेल में उसका मन इतना रमने लगे कि उसे अपने घर की याद ही न आवे, जब वह अपने को गुलाम बनाने वाले शासक के पाँव चूमने में ही अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करने लगे तब यह मान लेना चाहिए कि उसकी निराशा की पराकाष्ठा हो चुकी, उसके भीतर की अन्तिम चिनगारी भी बुझने वाली है।

मेले का यह गीत कुछ ऐसा ही प्रभाव मन पर छोड़ता है। यह गीत सामन्तवादी समाज के अन्तर्गत रहने वाले साधन सम्पन्न और साधन विहीन वर्गों का अन्तर ही स्पष्ट नहीं करता, वरन वह यह भी बताता है कि साधन हीन वर्ग किस प्रकार सब कुछ सह लेने के लिए, सहनशीलता की इस मनोवृत्ति को औचित्य प्रदान करने के लिए भी विवश हो गया है! जब मन इतना मर जाय और जब वह यह स्वीकार करले कि इस स्थिति में परिवर्तन होने वाला नहीं है तो फिर धीरज धरने के अलावा रास्ता ही क्या रह जाता है? और इस प्रकार के धीरज की माँग प्रभु से करना उस परवशता पर अन्तिम रूप से मुहर लगा देने की मांग करने के समान है।

मेले का एक ही अन्य गीत है जिसमें भगवद्भक्ति तथा सफल गार्हस्थ्य जीवन का समन्वय अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है। गीत यह है—

राम नहिं जाने तो और जाने काभा!
फूल तो वह है जो राम जी को सोहै,
नाहीं तो बेला लगाए से काभा?
कपड़ा तो वह है जो राम जी को सोहै,
नाहीं गुलाबी रंगाए से काभा?

गीत के इस अंश में सब कुछ भगवतार्पण करने की सीख दी गयी है। संसार में सब कुछ जान लेने से क्या लाभ जब रामजी को न जान पाए? यदि भगवान जी को समर्पित न किया गया तो फल लगाने का कोई औचित्य नहीं। रंग बिरंगे कपड़े रँगने से क्या लाभ? उसकी उपयोगिता तो यही है वह भगवान की मूर्ति को पहनायी जाय। भक्ति परम्परा का यह गीत "भगवान यह सब कुछ तुम्हारा ही है और तुम्हीं को समर्पित करता हूँ" अच्छे से अच्छे और ऊँचे से ऊँचे भक्त कवियों के भजनों-गीतों की कोटि में आ सकता है। मगर इसका दूसरा अंश भी है।

पूत तो वह है जो पिता जी को सेवे,
नाहीं तो पाजी के जनमे से काभा?
तिरिया तो वह है जो दूनौ घर तारै,
नाहीं तो माई के कोख आए काभा?

पुत्र तो वह है जो अपने पुज्य पिता की सेवा करता है। यदि वह अपना यह पावन कर्तव्य पूरा नहीं करता तो उस पाजी के जनम लेने से कोई लाभ नहीं। वह न पैदा होता तभी अच्छा था। स्त्री तो वह जो अपने मायका और ससुराल दोनों का उद्धार कर सके। यदि वह ऐसा नहीं करती तो फिर माँ की कोख में उसके आने से कोई लाभ नहीं। वह न भी आती तो बुरा न होता। माँ की कोख तो तभी सार्थक होती है जब उसको सफल करने वाली सन्तान जीवन क्षेत्र में उतर कर अपना कर्तव्य पूरा करे।

गीत के इस अंश का भी अर्थ साफ है। यह गीत, जैसा कि निवेदन किया जा चुका है, जीवन के आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों पक्षों को सुधारने और सार्थक बनाने की दृष्टि से ही गाया जाता है। मेले में भाग लेने वाले स्त्री पुरुष गृहस्थ ही होते हैं और वे भक्ति भावना से प्रेरित होकर तीर्थ करने, स्नान करने, देवी देवताओं का दर्शन करने के लिए ही इन मेलों में जाते हैं। इन भक्त हृदय गृहस्थों को इस गीत से कितनी सुन्दर शिक्षा मिलती है?

भाई-बहिन का प्यार

झूला झूलाने की प्रथा बहुत पुरानी और अखिल देशीय है, उमड़ते घुमड़ते बादलों की गड़गड़ाहट और तेज हवा के झोंकों की चुनौतियों का मखौल उड़ाती हुयी ग्राम बालाएँ आज भी पेड़ों की डालियों से लटके झूलों पर पेंग मारती गीत गाती देखी जा सकती हैं।

झूले पर गए जाने वाले गीत मादक, रसपूर्ण और विभोर कर देने वाले होते हैं। ये गीत सावन में गाए जाते हैं। परम्परा के अनुसार इस ऋतु में नवविवाहता लड़कियाँ भी अपने मायके चली आती हैं। जो लड़कियाँ नहीं आ पातीं वे अपने भाई, बाप और माँ को कोसती हैं। इन गीतों में सभी प्रकार के भाव पाये जाते हैं, सफल गृहस्थ जीवन के चित्र, भाई की वीरता का बखान, माता-पिता के प्यार की महिमा, पति की शक्ति सौन्दर्य पर गर्व आदि तो मिलते ही हैं; इनमें स्थल-स्थल पर ऊँचे सन्त कवियों की दार्शनिकता और भक्त कवियों की सहज भक्ति भावना भी मिल जाती है।

एक गीत है जिसमें बहिन कहती है—

बिरना, हाली हाली जेंवउ बिरन मोरा,
बिरना, तुरुक लड़इया क ठाढ़,
बिरना, मुगल लड़इया का ठाढ़।

कैसी वीर तथा मजबूत कलेजे की होगी वह बहिन जो चाहती है कि उसका भाई शीघ्र ही भोजन कर ले क्योंकि उसे मुगलों और तुर्कों से युद्ध करने के लिए जाना है। बहिन इस वीर भाई को खिला-पिला कर युद्ध करने के लिए भेज देती है। वह देखती है कि एक ओर अकेला उसका भाई खड़ा है दूसरी ओर साठ मुगल खड़े हैं। वह भाई साठों मुगलों से जूझता है और विजयी होता है। बहिन फिर गर्व से कहती है।

बिरना, कोखिया बखानऊं मयरिया कै,
जेकर पुतवा समर जीत ठाढ़।
बिरना, भगिया बखानौं बहिनियां कै,
जेकर भैया समर जीति ठाढ़।

बिरना, भगिया बखानौ मैं भौजी कै,
जेकर समिया समर जीति ठाढ़ ।

अर्थात मैं उस माँ की कोख को धन्य कहती हूँ कि जिससे उपजा हुआ यह वीर इस समर में विजयी हुआ। मैं उस बहिन के भाग्य को सराहती हूँ जिसका भाई ६० मुगलों को पराजित करने में सफल हुआ। मैं उस भाभी की मांग को धन्य कहती हूँ जिसके स्वामी ने शत्रुओं को पराजित कर अपनी वीरता का परिचय दिया !

इस गीत का ऐतिहासिक तत्व स्पष्ट है। निश्चय ही यह गीत उस समय रचा गया था जब गाँव की स्त्रियों को, साधारण ग्राम निवासियों को मुगल तुर्क आक्रमणकारियों से सदा भय बना रहता था। इन्हें सदैव ऐसे वीरों की आवश्यकता रहती थी जो इन आततायियों से उनकी रक्षा कर सके। "वीरन" भाई के लिए प्रयुक्त होने वाला बड़ा प्यारा शब्द है जिससे सदैव वीरता की ध्वनि निकलती रहती है। जो पुरुष अपनी बहिन, माँ, स्त्री की लाज न बचा सके, जो अपने कुल की मर्यादा और क्षेत्र की आजादी के लिए अपने प्राणों की बाजी न लगा सके उस पर कौन गर्व करेगा ? उसके जन्म लेने से लाभ ही क्या ? परन्तु जो तरुण अकेले साठ-साठ शत्रुओं को पराजित कर सकता है उस पर कौन मां, कौन बहिन, कौन स्त्री गर्व न करेगी ?

झूले के इस गीत का सन्देश अत्यन्त स्पष्ट है। इसमें जितना ओज है, जितनी शक्ति है, जितना स्वस्थ दृष्टि कोण है वह इस बात का प्रमाण है कि हमारे लोक जीवन का आधार भी उतना ही शक्तिशाली तथा स्वस्थ था। पंक्ति पंक्ति के बाद "बलैया लेउ बीरन" की टेक से जब यह मनोहारी गीत गाया जाता है तो स्वभावतः वह श्रोता को विभोर कर देता है।

निर्धनता

निम्नांकित गीत को देखें—

टुटही मड़इया बुनिया टपकेइ रे,
के सुधि लेवै हमार ?

जेठा छ्वावइ आपन बंगलवा,
देवरा छ्वावै चौपार।
हमरा मंदिलवा केऊ न छ्वावै,
जेकर पियवा विदेश।

इस गीत में उस सम्मिलित परिवार का चित्र है जिसके सदस्य अपने स्वार्थी में लगे हुए हैं, जिन्हें पूरे परिवार के सुख-दुख की पर्वाह नहीं है। वियोगिनी स्त्री को बरसात आते ही अपने पति की याद आती है। उसके जेठ अपना बंगला छ्वा रहे हैं। उसके देवर अपनी चौपाल ठीक करवा रहे हैं। मगर हाय! उसका मन्दिर कोई नहीं छ्वा रहा है, उसकी टूटी मड़ई से (जो कि पति के साथ रहने पर मन्दिर जैसा लगती है) बूंदें टपक रही हैं। उसकी सुधि लेने वाला कोई नहीं है, क्योंकि उसका पति परदेस में हैं।

यहां "पिया बिन नागिन काली रात" का नारा नहीं बुलन्द किया गया है। इस गीत में शृङ्गार-परकता नहीं है। इसमें जीवन की अत्यन्त कठोर सच्चाइयों को उघाड़ कर सामने रखा गया है। स्त्री गरीब है। उसका पति कमाने के लिए बाहर गया हुआ है। जब तक कमाकर वह वापिस न आवे उसके मन्दिर का, उसकी टूटी मड़ैया का जीर्णोद्धार नहीं हो सकता। वह स्त्री इस कठोर सच्चाई को भली भांति जानती है। इसीलिए जब उसके जेठ अपना बंगला छ्वा रहे हैं और उसके देवर अपनी चौपाल सुधरवा रहे हैं उस समय उसे अपने प्यारे पति की याद आती है। हमारे ग्रामों में निवास करनेवाली अगणित अभागिन, गरीब स्त्रियाँ इसी प्रकार जरा जरा सी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तड़प कर रह जाती हैं, मगर उनके अरमान पूरे नहीं हो पाते।

छोटी मोटी दुहनी दुध के
बिना रे अगिन बाफ़ लेई, बलैया लेऊं बीरन।
इहै दूध पियैं बीरन मोरा,
मैया लड़ैं मुगलवा के साथ, बलैया लेऊ बीरन।

चार पंक्तियों का यह गीत अपने में ही कितना सम्पूर्ण, कितना

प्रभाव पूर्ण, कितना आशाप्रद, कितना सजीव और कितना चुस्त है! ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता का कितना प्यारा चित्र इन चार पंक्तियों से उभर आता है !

बहिन कहती है, "दूध दुहने का मेरा छोटा-सा बर्तन है। उसमें धारोष्ण दूध भरा है, अभी-अभी का दुहा हुआ। वह इतना गर्म है कि उसमें बिना आग के ही भाप निकल रही है। मेरा भाई इसी दूध को पीकर इतना बलशाली हो जाता है कि वह मुग़लों से युद्ध करता है और उन्हें पछाड़ देता है।"

जानकारों का कहना है कि सोने के समय जो बातें दिमाग़ में रहती है सपने में वही दिखती हैं, और भोजन के समय जिस प्रकार के विचार मन में आते हैं उनका भी सीधा प्रभाव पड़ता है। इस गीत में बड़ी बहिन अपने छोटे भाई को धारोष्ण दूध पिलाते समय जैसी कल्पना करती है, भाई उसी कल्पना को अपने जीवन में साकार रूप देता है। हममें से अनेक ऐसे भाग्यशाली लोग होंगे जिन्हें माँ की तरह अपनी बड़ी बहिन का प्यार मिला हो। ये मंगल मूर्ति बहिनें कितने स्नेह से, कितनी शुभकामनाओं के साथ, कितनी आशा और कितने विश्वास के साथ, अपने भाइयों का लालन पालन करती हैं ! उन्हें पालती, खिलाती, पहनाती हैं। और भोजन कराते समय कितने आशीर्वादों की वर्षा करती रहती हैं !

इस गीत में बहिन का वही निश्छल प्रेम, भाई के प्रति वही शुभापेक्षा, उसके शौर्य, शक्ति के लिये वही मंगल कामना, कितनी सरलता पूर्वक, कितना स्वाभाविक बनकर उभर आयी हैं ! इन चार पंक्तियों में क्या नहीं कह दिया गया है ? अपनी बहिन से इस दूध जैसा पवित्र, निर्मल और उष्ण स्नेह पाकर कौन सा भाई अपने को धन्य न मानेगा, उसके संकेत मात्र पर अपने प्राण निछावर नहीं कर देगा ?

झूले के गीत के ही अन्तर्गत लड़की की विदाई के समय का एक गीत है। यह गीत कितना मार्मिक है ! यह गीत आँसुओं की भाषा में रचा गया है। इसमें पत्थर को पिघला देने की क्षमता है। इसका सन्देश शाश्वत

है। रस-परिपाक की दृष्टि से यह गीत अद्वितीय है। काव्य के सारे गुण इस गीत में अयाचित ही आ गये हैं। इस गीत की बिदा होती बेटी की वेदना और माँ के सम्बन्ध में उसकी भावना पूरे नारी समाज की वेदना और भावना है—

बाबा, निबिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर।
बलैया लेउं बीरन।
बाबा, बिटियउ जिनि कोउ दुख देय
बिटिया चिरैया की नाई!
बलैया लेउं बीरन।
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं,
रहि जइहैं निबिया अकेलि।
बलैया लेउं बीरन।
सबरे बिटिया जइहैं सासुर,
रहि जइहैं माइ अकेलि।
बलैया लेउं बीरन।

कन्या विदा होते समय अपने पिता से याचना करती है कि वह दरवाजे के सामने लगे नीम का पेड़ न काटेंगे। क्यों? इसलिये कि उस नीम के पेड़ पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं। कन्या फिर कहती है, "बाबा, कोई भी अपनी कन्या को दुख न दे।" क्यों? इसलिए कि इन कन्याओं की स्थिति ठीक उन चिड़ियों जैसी होती है तो कुछ समय पेड़ पर बसेरा लेकर उड़ जाती है। जिस प्रकार चिड़ियों के उड़ जाने पर नीम का पेड़ अकेला रह जाता है, उसी प्रकार जब माँ की गोद में कुछ समय रहकर, उसके आँगन की शोभा बढ़ाकर, उसके सिन्दूर और कोख को धन्य बनाकर, सभी कन्याएँ ससुराल चली जाती हैं तो माँ अकेली की अकेली रह जाती है।

कन्या की तुलना चिड़ियों से, माँ की उपमा नीम के वृक्ष से करके यहाँ इस लोक गीत के अनाम गायक ने सहज ही हमारी कोमलतम भाव-

नाओं को उभारने और हमारी करुणा को जगाने में सफलता प्राप्त कर ली है। जब मानवीय संवेदनाओं का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है कि प्राकृतिक तत्व भी उसमें डूबने लगते हैं, उसमें समा जाते हैं तो उनकी शक्ति अपरिमित हो जाती है।

सूरदास की पंक्ति—

मधुबन तुम कत रहत हरे,
बिरह वियोग श्याम सुन्दर के
ठाढ़े क्यों न जरे ?

पढ़ते ही सहसा हमारी आँखें भीग जाती हैं। जिस प्रकार वृक्ष की डाल पर चिड़िया रहती हैं, वहीं बसेरा लेती हैं, उसी की शीतल छाया में पलती हैं; उसी प्रकार ये लड़कियाँ अपनी माँ की गोद में, उसके आंचल की छाया में पलती हैं और जब बड़ी होती हैं, विवाह योग्य हो जाती हैं तो वे परायी हो जाती है, माँ की गोद को सूना कर ससुराल चली जाती हैं।

माँ की इस वेदना को लड़कियाँ खूब समझती हैं। उनका नारी-हृदय सरलता पूर्वक माँ की पीड़ा और व्यथा को अनुभव कर सकता है। इसीलिए लोक गीतकार ने पिता के घर से विदा लेती हुयी बेटी के मुख से यह निवेदन कराया है। यह गीत प्रत्येक माता की भावनात्मक स्थिति का परिचय देता है। सामन्ती युग का यह गीत आज भी नारी हृदय को वैसे ही रुलाता है। आज भी इस गीत को सुनाने पर आँसू रोके नहीं रुकते। जब तक बेटी के प्रति माँ की ममता बनी रहेगी, जब तक बेटी के विवाह के उपरांत ससुराल जाने की प्रथा चलती रहेगी, जब तक मानव हृदय में करुणा रस का स्रोत रहेगा, यह गीत अमर रहेगा, श्रोताओं को करुणा विगलित करता रहेगा।

हमारे गाँवों में भूमिहीन खेतिहरों, मजदूरों का एक बहुत बड़ा भाग है। इन लोगों को वे सारे काम सौंपे जाते हैं जिनसे आमदनी बहुत कम होती है और जिन्हें दूसरे वर्ग के लोग करना भी नहीं चाहते। खेत खलिहानों में मुख्य काम तो दूसरे लोग करते हैं परन्तु खेत निराने का

काम नीची जाति के लोगों, विशेषतः औरतों को दिया जाता है। खलिहानों के उठ जाने के बाद इनको खेतों से दाना बटोरने का हक भी मिल जाता है। निराना का अर्थ है खेतों में से अनावश्यक घास-पौधों को निकाल देना जिससे फसल के पौधों के उगने बढ़ने में दिक्कत न हो। यह काम सावन के महीने में प्रायः होता है। खेत निराते समय औरतें सामूहिक रूप से गाती भी रहती हैं। उनके गीतों में रस तो होता ही है, विचार की सामग्री भी बहुत रहती है। उनमें सामाजिक मर्यादाओं के प्रति बड़ी सजगता रहती है। इन गीतों में अन्य अगणित गुणों के साथ मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक संघर्षों तथा विषमताओं के चित्र भी बहुत मिलते हैं।

निरवाही के एक गीत का सारांश यह है। एक बहिन के घर एक भाई आता है। सास उसका अनादार करती है। बहिन किसी प्रकार लड़ झगड़कर अपने भाई के लिये अच्छा भोजन तैयार करती है। भाई जब खाने बैठता है तो अपनी बहिन को देखता है। उसकी हालत देखकर भाई की आँखों से आँसू चलने लगता है। वह अपने बहनोई से शिकायत करता है कि, "आपने मेरी चाँद, सूरज जैसी दीप्तमती बहिन को इतना कष्ट दिया कि वह दुख में जल जल कर कोयला हो गयी है।"

इसके बाद मौका पाकर बहिन अपने भाई को अपना दुखड़ा सुनाती है। वह कहती है, "भैया, मैं जाने कितने मन कूटती हूँ, कितने मन पीसती हूँ, कितने मन की रसोई बनाती हूँ। उसके बाद भी बहुत सा बर्तन माजना पड़ता है, बहुत दूर जाकर गहरे कुएँ से पानी खींचकर लाना पड़ता है। जब सब लोग खा-पी लेते हैं तो मेरी बारी आती है। मुझे सबसे बाद वाली छोटी रोटी मिलती है। उसमें भी ननद के लिए कलेवा रखना पड़ता है, चरवाहे को देना पड़ता है, देवर के लिए बचाना पड़ता है, कुत्ते बिल्ली को देना पड़ता है। कपड़ों का हाल भी बुरा है। उतारा हुआ कपड़ा मुझे मिलता है। उसमें से भी ननद के लिए ओढ़नी देनी पड़ती है और देवर के लिए कछोटा बनता है। जो कपड़ा बच रहता है उसी से मैं अपना तन-बदन ढँकती हूँ।"

भाई हाय कर उठा। बहिन ने फिर कहा, "भैया, यह दुख भौजी के सामने मत कहना, नहीं तो वह सब जगह शोर कर देगी। माँ से मत कहना नहीं तो उसकी छाती फट जायगी। चाची से मत कहना नहीं तो वह बोलियाँ बोलेंगी। बाबू जी से मत कहना नहीं तो वह सबके सामने बैठकर रोवेंगे। बहिन से भी मत कहना नहीं तो वह ससुराल जाने से इन्कार कर देगी। यह दुख उस अगुआ से अवश्य कहना जिसने मेरी शादी करायी थी और उस ब्राह्मण से भी जरूर कहना जिसने लग्न की मुहूर्त देखकर विवाह कराया था।

अन्त में बहिन कहती है, "भैया, तुम इस दुख की गठरी को बाँध कर नदी में छोड़ देना।" अर्थात् किसी से भी मत कहना कि मैं इतनी दुखी हूँ।

भाई घर पहुँचाता है। पिता पूछता है, "बिटिया को क्यों नहीं लाए?" भाई कह पड़ता है, "जैसे जमुना उमड़ कर बह रही है वैसे ही मेरी बहिन की आँखों से आँसू उमड़ते आ रहे हैं।" पिता तड़प उठता है, "तुम्हारी जाँघे थक गयी थीं या तुम्हारी बाहों में घुन लग गया था कि तुम उसे रोता ही छोड़ आये?"

वह भीतर जाता है। पत्नी खाना खाते समय पूछती है कि ननद कैसे हैं। उत्तर में वह कहता है—

जैसे धनिया, उअले अंजोरिय रे ना,
धनिया तैसे उअल मोर बहिनियाँ रे ना।

"जिस तरह आसमान का चन्दा नित नित प्रकाशमान होता जाता है उसी प्रकार मेरी बहिन भी नित नित उन्नति कर रही है, सुखी और समृद्ध होती जा रही है।"

इस गीत से भारतीय कृषक समाज के जीवन पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। नव विवाहिता कन्या के साथ ससुराल में जो अत्याचार होते हैं उसका यहाँ सच्चा वर्णन किया गया है। अतिशयोक्ति बिल्कुल नहीं की की गयी है। बहिन अपने भाई के सामने तो अपना सारा हाल बता जाती

है मगर वह नहीं चाहती कि उसके माता-पिता को किसी प्रकार का कष्ट हो या उन्हें अपमानित होना पड़े। वह यह भी नहीं चाहती कि उसके ससुराल वालों की किसी भी प्रकार की बदनामी हो। वह मर्यादा शीला भारतीय ललना सब कुछ सह लेना चाहती है, मगर अपने ससुराल वालों की बद-नामी नहीं चाहती। उसे किसी से शिकायत नहीं। यदि उसे किसी पर रोष है तो उस अगुवा पर जिसने ऐसे घर में उसका विवाह तय करके उसकी जिंदगी बरबाद कर दी और उस ब्राह्मण से है जिसने गलत तरीके से सायत देखी।

यह गीत नीची जाति की विशेषतया चमारों की स्त्रियों द्वारा सामू-हिक रूप में खेत निराते समय गाया जाता है। सामाजिक जीवन का कितना यथातथ्य वर्णन इस गीत में है। इसमें कितनी व्यथा है, कितनी पीड़ा, कितना हाहाकार है! फिर भी कितना संयम, कितनी मर्यादाशीलता है! कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो इस गीत को सुनकर रो न उठे?

इस गीत का रचयिता कौन था? कौन वह कलाकार था जिसने इन शब्दों में परवश स्त्री समाज के समस्त करुणा क्रन्दन को भर लिया? खेत निराते समय इस गीत को ऊँचे स्वर में सम्मिलित रूप से गाती हुई अपढ़, निम्न श्रेणी की अनाभिजात्य स्त्रियाँ क्या इस समाज के अत्याचारों का भण्डाफोड़ नहीं करतीं? कौन है जो इस गीत में वर्णित सच्चाइयों को चुनौती दे सके? कौन है जो इसकी मर्यादाशीलता के सामने, संयमशीलता के सामने, सिर न झुका देगा? यह गीत सभी संवेदनशील व्यक्तियों के लिए, सभी कवियों और कलाकारों के लिए, सभी समाज के उद्धार का दम भरने वाले नेताओं के लिए मूक नारी समाज की खुली चुनौती है, जिसे अनसुनी करके इस जर्जर समाज व्यवस्था को अधिक दिनों तक नहीं चलाया जा सकता।

वीरपूजा

अभी कुछ वर्ष पहिले तक देहातों और शहरों में भी हाँथ से चक्की पीसने की प्रथा रही है। आटा पीसने की मशीनों के आ जाने के कारण

धीरे-धीरे हाँथ से चक्की चलाकर आटा पीसने की प्रथा समाप्त होती जा रही है। जिस प्रकार निरवाही करते समय औरतें गाना गाती हैं उसी प्रकार चक्की पीसते समय भी वे गाती रहती हैं। चक्की पीसने का समय प्रायः भोर बेला ही हुआ करता था। सूरज निकलने के काफी पहिले ही यह काम समाप्त हो जाता था। ज्यों-ज्यों यह प्रथा मिटती जा रही है त्यों-त्यों ये औरतें जाँते-चक्की के गीतों को भी भूलती जा रही हैं। परन्तु इन गीतों में कितना रस है, कितनी शक्ति है, कितनी चित्रात्मकता है यह तो इन गीतों के सुनने पर ही मालूम हो जाता है।

चक्की का एक गीत है जिसका सम्बन्ध सन् १८५७ के प्रथम स्वातन्त्रय युद्ध के वीर सेनानी बाबू कुंअर सिंह से है। बाबू कुंअर सिंह भोजपुरी क्षेत्र के राणा प्रताप कहे जा सकते हैं। वृद्धावस्था के बावजूद बाबू साहब ने जिस योग्यता और बहादुरी के साथ स्वतंत्रता संग्राम का संचालन किया, जिस तरह बार-बार अंग्रेजी फौजों को हराया और मरने के तीन दिन पहिले भी वह अंग्रेजी फौज को मार भगाने में जिस तरह सफल हुए, इन घटनाओं की कल्पना करके ही हम रोमांचित हो जाते हैं।

कुंवर सिंह की पूजा अब भी घर-घर में होती है। औरतें उनके नाम से मनौतियाँ मानती हैं, नव विवाहित वधुएँ उनसे अपने अमर सोहाग की माँग करती हैं, माताएँ अपने बच्चों को बारे में कहानियाँ सुनाकर उन्हें वीरता और देश भक्ति की शिक्षा देती हैं। उनके सम्बन्ध में बिरहे गाए जाते हैं। खेतों पर काम करते अलमस्त किसान उनके नाम की टेर लगाते रहते हैं। जाँते पर भी उनके सम्बन्ध में गीत गाए जाते हैं। कृषक समाज प्रत्येक सम्भव अवसर पर बाबू कुंवर सिंह को याद करता है, गीत गाता है, पुराने गौरवशाली इतिहास को बार-बार याद करता है। ऊँचे पढ़े लिखे समाज के इतिहासकारों ने चाहे अमर शहीद और सेनानी बाबू कुंवर सिंह की वीरता की गाथा को भुला दिया हो, परन्तु लोक मानस पर अपनी जो अमिट छाप बाबू कुंवर सिंह छोड़ गए थे, वह अब तक ज्यो की त्यों बनी हुई है।

जाँते के एक गीत का थोड़ा सा अंश हम नीचे दे रहे हैं—

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुंअर सिंह,
ए सुन अमर सिंह, अमर सिंह भाय हो राम।
चमड़ा के टोड़वा दाँत से हो काटे कि,
छतरी के धरम नसाय हो राम।१।
बाबू कुँवर सिंह औ भाई अमर सिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।
बतिया के कारण से बाबू कुंवर सिंह,
फिरंगी से रेढ़ बढ़ाय हो राम।२।
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू,
कोइलवर में रहे छाय हो राम।
लाख गोला तुहुँ के गनि के मरिहौं,
छोड़ बरहरवा के राज हो राम।३।
रोवत बाड़े बाबू तो कुँवर सिंह
मुखवा पर धर के रुमाल हो राम।
ले ली लड़इया हमतो बूढ़ा हो समय में,
अब कउन होइहैं हवाल हो राम।४।

बाबू कुंवर सिंह और अमर सिंह भाई थे। कुंवर सिंह ने अमर सिंह के पास पत्र लिखा कि अब तो चमड़े का कारतूस दाँत से काटना होगा, ऐसा हुक्म सिपाहियों को हो गया है। परन्तु इससे क्षत्रिय का धर्म नष्ट हो जायगा, इसलिए हमें ऐसा हुक्म नहीं मानना चाहिए। इसी बात पर बाबू कुंवर सिंह की अंग्रेजों से चल गयी। दोनों की शत्रुता बढ़ती गयी।

अँग्रेजों का कैम्प दानापुर में था। वहाँ से उठकर उन्होंने आगे आकर कोइलवर में डेरा डाला। उन्होंने कुँवर सिंह के पास कहला भेजा कि वह बरहरवा छोड़ दें, नहीं तो एक लाख गोले गिनकर बरसाए जाएँगे।

बाबू कुँवर सिंह को अँग्रेजों से कोई डर न था। वे अपने परम्परागत क्षात्र धर्म से परिचित थे। उन्हें केवल इस बात का अफ़सोस था कि

अब वह अत्यन्त वृद्ध हो गए थे और उनके शरीर में पहिले जैसी शक्ति नहीं रह गयी थी। अपनी वृद्धावस्था की परवशता के कारण बाबू कुँवर सिंह खीझ कर रो पड़े।

परन्तु इतिहास साक्षी है कि बाबू कुँवर सिंह की आँखों के ये आँसू, कायरता के नहीं, वीरता, क्रोध और प्रतिहिंसा के आँसू थे। अस्सी वर्ष के जर्जर शरीर में इस राष्ट्रीय संग्राम के पुनीत अवसर पर नयी शक्ति, नया साहस, नया विश्वास और नयी आशा पैदा हो गयी थी। जहाँ-जहाँ मुठभेड़ हुयी, बाबू साहब ने अँग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। स्वर्ग जाते जाते भी वह शत्रुओं को पराजित करते गए।

बाबू कुँवर की वीर गाथा भोजपुरी लोकगीतों में बिखरी पड़ी है। ये लोक गीत हमारे राष्ट्रीय इतिहास की मूल्यवान कड़ी हैं। जिस समय विन्सेन्ट स्मिथ, वैलेन्टाइन शिराल आदि इस संघर्ष के इतिहास पर असत्य का पर्दा डालने में लगे हुए थे, उस समय इन लोक गीतों ने अपने आँचल में छिपाकर इन पवित्र तथ्यों की रक्षा की थी। कुँवर सिंह का नाम आज भी इन गीतों के कारण भोजपुरी क्षेत्र के प्रत्येक घर में व्याप्त है।

प्रणय और भूख

हमारे लोक गीतों में हृदय के सारे भाव पूरे वेग के साथ उठते उभरते दिखाई देते हैं। शृंगार सम्बन्धी गीतों में जितनी स्पष्टता और शक्ति होती है, आर्थिक वैषम्य, जीवन की कटुता और दुख पहुँचाने वाली सच्चाइयाँ भी उतनी ही तीव्रता और शक्ति के साथ इन गीतों में अभि-व्यक्ति पाती हैं।

भूखे भजन न होंहि गोपाला।
ले लो कण्ठी, ले लो माला॥

इस अति प्रचलित कहावत में भूख की तीव्रता पर ही बल दिया गया है। भूख मनुष्य से कौन सा पाप नहीं करवा लेती? इसीलिए अन्न को ब्रह्म के समक्ष ला बिठा देने की बात हमारे हमारे शास्त्रों में की गई है।

एक लोक गीत का एक टुकड़ा है।

भूखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।

साथ ही बिरहे का एक टुकड़ा और भी है जो बिल्कुल इसके विपरीत पड़ता है। वह टुकड़ा है—

भुखिया के मारे बिरहा बिसरिगा, भूलि गयी कजरी कबीर।
देखि के गोरि के मोहनि सुरति, अब उठै न करेजवा में पीर।

स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण ही अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति है। इन दोनों टुकड़ों को ज़रा ध्यान पूर्वक देखें। प्रेमिका की ओर से कहा गया है, "मुझे न भूख लगती है, न प्यास लगती है! मुझे तो बस उनका (अपने प्रेमी का) मोह लगता है!" स्त्री का प्रेम पुरुष के प्रेम से अधिक गहरा, शक्तिशाली, वेगवान होता है। मनोविज्ञान के पंडित इसको मानते हैं। वह जब प्रेम करती है तो अपना तन, मन, सुख, दुख, भूख, प्यास भूल जाती है। वह अपने को भूल जाती है। वह अपने को उन्हीं का, उन्हीं के लिए, समझती है। उसका निजी व्यक्तित्व रह ही नहीं जाता। तभी उसको न भूख लगती है, न प्यास लगती है; बस उसे पिया का मोह लगता है।

परन्तु पुरुष का प्रेम सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है। वह प्रेम तो करता है और उसके लिए नाना प्रकार के त्याग भी करता है। परन्तु वह अपने को बिल्कुल मिटा नहीं देता। वह अपने को बिल्कुल बिसरा नहीं देता। प्रेम करते हुए भी उसे अपने तन, मन, सुख, दुख, भूख, प्यास की सुधि बनी रहती है। इसीलिए जब उसे कड़ाके की भूख लगती है तो वह कजरी, बिरहा, कबीर, सब कुछ भूल जाता है और अपनी प्रेमिका की मोहनी सूरत देखकर उसके कलेजे में पीर नहीं उठती।

परन्तु यह तो इस गीत की एकांगी व्याख्या हुयी। अस्ल बात यह है कि इस गीत में गीतकार ने भावुकता के स्थान पर जीवन की कठोर सच्चाई, भूख का ज़ोर, पर बल दिया है और कहा है कि जिस प्रेमिका के

कारण मनुष्य अपना राजपाट, धन धान्य, धर्म कर्म सब कुछ छोड़ने को उद्यत हो जाता है उसी प्रेमिका की मोहनी सूरत उस उस वक्त फीकी और अनाकर्षक लगती है, जब कि उसके पेट में चूहे डण्ड पेलते रहते हैं। अर्थात् प्रेम तभी किया जा सकता है जब कि तन मन स्वस्थ हो, भूख की विह्वलता से पीड़ित और क्लान्त न हो। स्वस्थ तन में स्वस्थ मन और स्वस्थ मन में ही स्वस्थ प्रेम निवास कर सकता है। जब तक मनुष्य अभावों से पीड़ित रहेगा, मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रहेगा, तब तक सच्चे अर्थ में वह प्रेम नहीं कर सकता; संगीत, कला, कविता सब कुछ उसके लिए निरर्थक है।

अब, 'भूखिया न लागै, पियसिया न लागै, हमके मोहिया लागै हो' वाली पंक्ति पर ध्यान दीजिये। पूरा गीत इस प्रकार है—

पुरुब से आयी रेलिया, पछिउं से आयी जहजिया,
पिया के लादि ले गयी हो।
रेलिया होइगा मोर सवतिया,
पिया के लादि ले गयी हो।
रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी,
उई पइसवै बैरी हो।
देसवा देसवा भरमावै,
उई पइसवै बैरी हो।
भुखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।
तोहरी देखि कै सुरतिया,
हमके मोहिया लागै हो।
सेर भर गेहुँवां बरिस दिन खइबै,
पिया के जाय न देबै हो।
रखबै अँखिया के हुजुरवा,
पिया के जाय न देबै हो।

निश्चय ही यह लोक गीत उस समय रचा गया था जब कि रेलवे की लाइनें बिछ गयी थीं और गाँवों के नौजवान लोग कमाने के लिए बम्बई, कलकत्ता रेलगाड़ियों पर चढ़कर जाने लगे थे। बिरहिणी ग्राम वधू पूरब-पश्चिम दोनों ओर से आने वाली रेलगाड़ी और जहाज को अपने शत्रु के रूप में, सौत के रूप में, देखती है। रेलगाड़ी और जहाज़ को सौत के रूप में गीत में प्रयुक्त करना लोकगीतकार के ही बूते की बात है। भावनाओं को तीव्रता प्रदान करने, विचारों को स्पष्ट करने और संवेदनाओं को सजग करने के लिए ही उपमाओं और उदाहरणों आदि का सहारा लिया जाता है। लोकगीतकार बेधड़क प्रेमी को परदेश ले जाने वाले इन यातायात के साधनों को सौत के रूप में चित्रित कर देता है। रोती बिलखती नई नवेली बहू चीत्कार कर उठती है कि, "हाय, मेरी सौत रेलगाड़ी मेरे पिया को मेरे पास से छीन ले गयी!" फिर वह कुछ स्वस्थ होती है। सोचती है, आखिर इस जहाज अथवा रेलगाड़ी में कौन सा ऐसा आकर्षण है जो वह मुझसे मेरे पति को दूर कर देती है? उसे ध्यान आता है कि असली शत्रु पैसा है। इसी पैसे के ही कारण उसका पति उससे दूर होने पर मजबूर हुआ है। यदि पैसों की आवश्यकता न होती तो उसका पति उसे इस तरह रोता, बिलखता छोड़कर रेलगाड़ी पर चढ़कर विदेश क्यों चला जाता?

पैसा! हाय, दो अक्षरों का यह शब्द कितना सत्यानाशी, कितना कठोर, कितना निर्मम है! गाँव की गरीब किसान बेटी सोचती है यदि वह भूख भूख न चिल्लाती, यदि वह कपड़ों की माँग न करती, यदि वह घर की इच्छा न करती तो उसे पैसों की जरूरत ही न होती। यदि उसे पैसों की जरूरत न होती तो उसका पति उसे छोड़कर कलकत्ता, बम्बई जाने के लिए मजबूर न होता।

वह अपनी भूख-प्यास, अपनी भौतिक आवश्तकताओं को याद कर आत्मग्लानि से गड़ जाती है, वह पछताती है और फिर आर्त कातरस्वर में नारी के आत्म समर्पण की भावना को सार्थकता प्रदान करती हुई कह पड़ती है—

भूखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।

इतना ही निवेदन कर देने से उसका जी नहीं भरता। वह फिर आगे कहती है—

सेर भर गेहुँवां, बरिस दिन खइबै,
पिया के जाय न देबै हो।

बेचारी लड़की इस बात के लिए तैयार है कि वह केवल एक सेर गेहूँ पीस कर उसी पर बरस भर गुजारा कर लेगी, मगर वह अपने प्रिय को परदेस न जाने देगी।

जिस समय अँग्रेजी शासन का सिक्का जम गया और गरीब भूमि-हीन खेतिहर बम्बई कलकत्ता जाकर पैसा कमाने पर मजबूर हो गये उस समय हजारों लाखों नवपरिणीता बहुओं को तारे गिन गिनकर बरसों तक रातें बितानी पड़ी थीं। इस लोक गीत में उसी सामाजिक स्थिति का एक रोमांचकारी चित्र है जब कि पैसा कमाने के लिए पति रेलगाड़ी पर चढ़कर विदेश जाने को मजबूर हुआ था, और सारी मिन्नत आरजुओं के बाद भी पत्नी पति को परदेश जाने से रोक न सकी थी; जब पैसों की वेदी पर प्रेम, शृंगार और संयोग-सुख बलिदान हुआ था; जब अर्थ शास्त्र के कठोर नियमों ने प्रेम की कोमल गर्दन को मरोड़ दिया था।

चल ले चरखवा !

चरखा आदि काल से ही हमारी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का महत्व पूर्ण अंग रहा है। इसीलिए वैदिक काल से आज तक के साहित्य में हमें चर्खे का चर्चा मिलता है। कविवर मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत' में बनवासिनी सीता से चर्खा चलवाया है। 'साकेत' आधुनिक युग का काव्य है अतः उसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतीक चर्खे का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है, विशेषतया जब कवि ने जान बूझकर 'साकेत' के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न अंगों को पुष्ट करने तथा बल पहुँचाने का स्पष्ट प्रयत्न किया है। मगर यदि चर्खे का इतिहास मानव सभ्यता के

विकास के इतिहास के साथ इतना मिला-जुला न होता तो सीता जी के हाथों में चरखा थमा देने की गलती गुप्त जी कदापि न करते।

वेदों में सूत कातने और कपड़ा बनाने का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि से लेकर हमारे लोकगीतों तक चर्खा चलाने, सूत कातने और कपड़ा बनाने का अटूट क्रम मिलता है। योरप में भी ऐसा ही है। हो सकता है कि पहिले कपड़ा बुनने वालों की जाति अलग न रही हो और धीरे धीरे आबादी की संख्या बढ़ने तथा कामों का बंटवारा करने की प्रवृत्ति के जाग्रत होने पर यह काम एक वर्ग विशेष और फिर जाति विशेष के हांथ में आ गया हो। लगता है कि चरखा तो फिर भी अधिक तर घरों में चलता था। हाँ, बुनने का काम, कुशल काम होने के कारण, कुशल हांथों में आ गया हो और बाद में इन कुशल कारीगरों की जाति ही अलग हो गयी हो। चर्खे तो आज भी पंजाब, गुजरात, आन्ध्र आदि प्रदेशों में अच्छी तरह चलते हैं। इस उद्योग को गाँधी जी के आर्शीवाद से बहुत बल मिला। चरखा बापू जी की कृपा से ग्राम उद्योग का मूल आधार और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने का एक मजबूत अस्त्र भी बन गया।

'ग्राम गीत' में पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा उद्धृत अथर्ववेद का एक मन्त्र है जिसमें वधू वर को अपने हाथ से काते हुए सूत का वस्त्र देती हुई कहती है, "जो कपड़े के अन्तिम भाग हैं, जो किनारियाँ हैं, जो बाने और ताने हैं, इन सब के साथ पत्नी के द्वारा जो बुना हुआ कपड़ा होता है, वह हमारे लिए सुखदायक हो।"

एक पंजाबी गीत है:—

चरखा मेरा अठ फागुड़ा माल से मेरी नूँ ताड़।
पूणीं तां बदां लसलसी तन्द कढ्ढा दर्याउ।
आगे तो चर्खा रँगला पिच्छे पीढ़ा लाल।
चकलेदे उधर चाकला चकले दे उधर कत्यो।
कत्तन वाली नाजो कोमली।

इसका अर्थ है—

"मेरा चरखा आठ फांकों का बना हुआ है। मेरी माल को ताव है। मैं बहुत पतली पूनो बनाकर नदी जितना लम्बा तार निकालती हूँ। सामने रंगीला चरखा है। पीछे लाल पीढ़ा है। चकले के ऊपर चकला और चकले के ऊपर कथ है। और इस चरखे को चलाने वाली सूत कातने वाली लड़की कोमल सुन्दरी है।"

अनेक ऐसे गीत भोजपुरी, अवधी, मैथिली, राजस्थानी आदि भाषाओं में मिलते हैं जिनमें चरखे ने वियोगिनियों को जीने का सहारा और अपने सतीत्व की रक्षा करने का सम्बल दिया है। एक राजस्थानी लोकगीत है—

चाल रे चरखला, हाल रे चरखला।
ताकू तेरो सो बणो, लाल गुलाबी माल।
चरकूँ मरकूँ फिरै घेरणी, मधरो मधरो चाल।
चाल रे चरखला।
गुड्डी तेरी रांग रगीली, तकली चक्करदार।
चोखो बन्यो दमकड़ो तेरो, कूकड़िए री लार।
चाल रे चरखला।
कातणवाली छैल छबीली, बैठी पीढ़ो ढाल।
महीं महीं वा पूणी कातै, लम्बो काढ़ै तार।
चाल रे चरखला।

इस गीत में चरखे से सम्बन्धी सारे शब्द प्रायः आ गए हैं, जो उच्चारण भेद के साथ सारे उत्तराखण्ड में प्रचलित हैं। उपर्युक्त पंजाबी लोक गीत की भांति इस चरखे को चलाने वाली स्त्री भी छैल छबीली है। पंजाबी लोक गीत की कातने वाली कोमल सुन्दरी है। राजस्थानी चरखा चलाने वाली स्त्री छैल छबीली है। दोनों मस्त होकर, तन्मय होकर, चरखा चलाती हैं। वे श्रम करती हैं और अपने श्रम का मूल्य संतोष और आनन्द के रूप में प्राप्त करती हैं।

मगर भोजपुरी नारी चरखा कातकर अपने पति के वियोग का दुख सह लेती है। वह मन ही मन सोचती है—

धरि गइलै चनन चरखवा,
सिरजि गज ओबरि हो राम।
दिन भर कतबइ चरखवा,
ओहरिया ओठकाइ देवइ हो राम।
सांझि के सुतबै मइया जी के कोरवां,
त प्रभु बिसराइ देबइ हो राम।

"वह तो कोठरी बनाकर उसमें चन्दन का चरखा रख गए हैं। मैं दिन भर चरखा कातूँगी, फिर उसे उठाकर रख दूँगी। संध्या को मां की गोद में सो जाऊंगी और इस तरह मैं अपने पति के वियोग का दुख भुला दूँगी।"

श्रम की महत्ता—

जनेऊ (यज्ञोपवीत) का एक गीत है :—

राइयो रुक्मिन बीज लै जायं।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी, काहे की है डन्डी।
चन्दन चरखी, सोने की है डन्डी।
राइयो रुक्मिन ओटैं कपास।
काहै की है धुनियां काहै की है तांत।
सोने की धुनियां रेशम की है तांत।
राइयो रुक्मिन धूनैं कपास।
काहे की है रहटा, काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातैं सूत।
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।

तीन तागा, चार तागा, पांचवें जनेउ।
पांच तागा, छः तागा, सातवें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ।
पहिलो जनेउ गनेस जी को देव।
दूसरा जनेउ ब्रह्मा जी को देव।
तीसरा जनेउ महादेव जी को देव।
चौथी जनेउ विष्णु जी को देव।
पांचवों जनेउ सब देवतन को देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन को देव।
सातवों जनेउ बरुवा को देव।
अहिर गड़ेरिया बम्हन कर लेव।

—ग्रामगीत

रामायण के राजा जनक ने हल चलाकर खेत जोता था। इस गीत के राम लक्ष्मण दोनों कपास बोते हैं। रुक्मिणी कपास धुनती हैं और सूत कातती हैं। उस सूत की जनेउ बनती है। वह जनेउ सारे देवताओं को समर्पित की जाती है। उसकी पवित्रता की महिमा का क्या कहना ? अहीर गड़ेरिया भी उस जनेउ को धारण करने के बाद ब्राह्मणों की तरह पवित्र और उच्च हो जाते हैं। इस गीत में श्रम की महत्ता और पवित्रता पर कितना बल दिया गया है ? खेत जोतना, कपास बोना, रुई धुनना, और सूत कातना हेय कार्य नहीं है। श्रम अपने में अत्यन्त पवित्र वस्तु है। उसमें ब्राह्मण और शूद्र का भेद नहीं होता। जो लोग हल की मूठ पकड़ना अधर्म समझते हैं, नीच कर्म समझते हैं, उनके लिए यह गीत चुनौती है। हरवाहा, धुनियाँ, जुलाहा आदि को इसीलिए नीच समझा जाता है कि वे खेत जोतते हैं, रुई धुनते हैं, कपड़े बुनते हैं। जो लोग इनके परिश्रम से लाभ उठाते हैं, अपने तन की रक्षा करते हैं वे अपने को महापुरुष समझते हैं। यह गीत इस धारणा को भ्रामक और अनुचित सिद्ध करता है। श्रम स्वयं पवित्र वस्तु है। श्रम का फल भी पवित्र ही होता है। पवित्र केवल

जनेऊ ही नहीं होती। हर प्रकार के श्रम से उत्पन्न वस्तु पवित्र होती है, क्योंकि ईमानदारी से बहा हुआ श्रम स्वेद उसमें लगा रहता है।

श्रम और शृंगार का समन्वय, संघर्ष और संतोष का मेल, कर्म और आनन्द की एकता ही, कृषक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। वह हल जोतते हुए, बीज बोते हुए, खेत निराते हुए, फसल काटते हुए, खलिहान से दाने घर ले जाते हुए गाता रहता है। वह गाता है। उसकी माताएँ, बेटियाँ, बहिनें और बहुएँ, सभी गाती हैं। परिश्रम करते समय गाते रहने से परिश्रम की थकान कम हो जाती है, उसमें एक रंगीनी पैदा होती है, जान आ जाती है। इसके अनेक उदाहरण हमने ऊपर दिये हैं।

पैसा और प्रेम

जाँते का एक गीत है—

देइ गए चनन चरखवा ओंठगनेक मचिया हो राम !
अरे पिया देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोड़िउ हो राम !
घुनन लगे चनन चरखवा ओंठगने क मचिया हो राम ?
अरे पिया, छुटै चाहै तोहरी दोहइया, धरम चाहै डोलै हो राम।

इस गीत में वियोगिनी पत्नी अब वियोग की स्थिति को सहने में अपने को असमर्थ पा रही है। जाते समय वह चन्दन का चरखा दे गये थे। बैठने के लिए मचिया दे गए थे। और, अपनी शपथ देकर कह गये थे कि अपने धर्म की रखवाली करना, अपना सतीत्व बचाए रखना। वायदा कर गए थे कि वह परदेश से शीघ्र ही लौटेंगे। मगर उन्होंने अपना वायदा पूरा नहीं किया। वह नहीं आए। इन्तजार करते करते आँखें पथरा गयीं। समय बहुत बीत गया। यहाँ तक कि चन्दन का चरखा घुनने लगा। जो मचिया दे गये थे वह भी जवाब देने लगी। अब सब्र नहीं होता। बर्दाश्त की भी कोई हद होती है! बाट जोहने का भी कोई अन्त होता है! परेशान होकर, घबड़ाकर वह कह पड़ती है। "मेरा धर्म छूटा ही चाहता है, तुमने जो शपथ दिलाई थी, वह झूठी पड़ने वाली है। अब चले आओ।"

जाँता पीसते समय गाती हुयी, चरखा कातने वाली वियोगिनी बाला

के इस आत्म निवेदन के बहाने, गाँवों की अगणित वियोगिनी बालाएँ अपने प्रीतम को याद कर इस प्रकार का आर्तनाद करती आयी हैं। यदि प्रीतम को कमाने के लिए परदेस न जाना पड़ता, यदि वह परदेश में, बंगाले के जादू के चक्कर में, अथवा छुट्टी न मिलने से, इतने लम्बे अरसे तक रुक जाने के लिए मजबूर न होता तो इतने करुण, इतने व्याकुलता पूर्ण, इतने घूँसेमार गीत क्यों सुनने को मिलते ? इस प्रकार के गीत पूरबी जिलों में अधिक इसलिए मिलते हैं कि यहीं के लोग अधिक संख्या में पैसा कमाने के लिए, घर में व्याहता स्त्री को छोड़कर, बम्बई, कलकत्ता, बरमा आदि चले जाया करते थे। आर्थिक कारण मानव को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, और वे किस प्रकार रागात्मक सम्बन्धों को भी छिन्न भिन्न कर देते हैं, ये लोक गीत इसके प्रमाण हैं।

कृषक जीवन का आदर्श

एक मारवाड़ी गीत है—

उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो।
अथूणें होय खेत चवे न आसरो।
नाड़ा खेत नजीक जड़े खोलणा।
इतना दे करतार फेर नहीं बोलणा।

इसका गायक किसान सिर्फ यह चाहता है कि उसके पिता का घर और उसकी ससुराल एक ही गाँव में हो, खेत पश्चिम में हो, झोपड़ी टपकती न हो और तालाब खेत के पास ही हो जिससे बैलों को पानी पीने के लिए उन्हें बहुत दूर न ले जाना पड़े। भगवान इतना दे तो और कुछ नहीं चाहिए। एक किसान की ये थोड़ी सी, सरल सी माँगें हैं, उतनी ही सरल जितना सरल यह गीत है। मगर इतने में उस किसान ने अपनी सारी आवश्यकताएँ बता दी हैं। वह किसान किसी मुक्ति अथवा परलोक की आकांक्षा नहीं रखता। वह बहुत से हाँथी-घोड़े, धन-सम्पदा, यश-वैभव भी नहीं चाहता। वह छोटी सी गृहस्थी चाहता है, जिसमें वह हो, उसकी पत्नी हो। उसकी ससुराल उसी गाँव में रहेगी तो पत्नी का वियोग भी

सहना होगा। ऐसी झोपड़ी हो जो बरखा बूँदी में उसे आश्रय दे सके। खेत सींचने और बैलों को खिलाने पिलाने की सुविधा हो। बस वह मेहनत करेगा, खेती से अनाज पैदा करेगा, खुद खाएगा, पत्नी को प्यार से रखेगा। बैल गाय की सेवा करेगा। इतनी सी उसकी कामना है, इतनी सी उसकी महत्वकांक्षा है।

इसी प्रकार का एक गीत हमें 'सुत्तनिपात' में मिलता है। यह गीत सहस्त्रों वर्ष पुराना है और अपनी प्रौढ़ता, चुनौती तथा जीवन के प्रति सच्ची आस्था के लिए अत्यन्त लोकप्रिय है। इस गीत में आदर्श, सुव्यवस्थित गार्हस्थ्य जीवन के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट की गयी है।

धनिय नाम का एक एक गोप आश्वस्त है कि उसकी गृहस्थी इतनी अच्छी है कि कोई उसका कुछ कर नहीं सकता। वह बिल्कुल निश्चिन्त है। इतने में बादलों की गड़गड़ाहट सुनायी देती है। धनिय सजग होता है। वह घर से बाहर निकल कर देखता है कि आसमान में काले मेघ मंडरा रहे हैं। बिजली कौंध रही है। घनघोर वर्षा होने ही वाली है। वह एक बार घूम कर अपने घर की ओर, खेतों की ओर, गाय बैलों की ओर, और ग्राम वासियों की ओर देखता है। फिर आश्वस्त हो वृष्टि के अधिष्ठाता इन्द्र से कहता है, "हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो।"

धनिय प्राचीन भारतीय कृषक समाज की, जनता की, कर्मठता, आत्मशक्ति और आत्म विश्वास का प्रतीक है। उसके इस चुनौती पूर्ण गीत में सारे कृषक वर्ग के आत्म विश्वास का एक चित्र आंखों के सामने आ जाता है। यह गीत पाली भाषा में है। "सुत्तनिपात" के उरग वग्ग धनिय सुत्त से यह गीत लिया गया है। गीत का महत्व पूर्ण अंश भाषानुवाद के साथ हम यहाँ दे रहे हैं।

पक्कोदनो दुद्ध खीरोऽहमस्मि अनुतीरे महिया समान वासो।
छन्ना कुटि आहितोगिनि अथचे पत्थयसी पवस्स देव!

"मेरे यहाँ भोजन यथेष्ट मात्रा में वर्तमान है। मेरे घर में दूध देने वाली गाएँ बंधी हैं। मैं नदी के किनारे अपने कुटुम्बियों के साथ एक घर में

रहता हूँ। मेरा घर भली भाँति छाया हुआ है। उसमें जलती हुई आग भी मौजूद है। हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो !"

अंधक मकसात वज्जरे, कच्छे रुलहतिणे चरन्ति गावो !
बुट्ठिपि सह्येय मा गतं, अथचे पत्थयसी पवस्स देव !

"न यहाँ मक्खियाँ है, न मच्छर। मेरे कछार में गायों के लिए हरी घास लहरा रही है। वहां चरती हुई मेरी गाएँ वर्षा के वेग सहने में समर्थ हैं। हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो !"

खिला निखाता असम्प वेधी, दामा मुंजमया नव सुसण्ठाना।
नहिं सक्खिन्ति धेनु पापि छेत्तु म, अथचे पत्थयसी पवस्स देव !

"मेरी गायों के खूंटे धृढ़ता पूर्वक गड़े हुए हैं। मूंज की बटी हुयी रस्सियां नयी और पोढ़ी हैं। उन्हें गाय तोड़ नहीं सकती। हे देवता, तुम जितना चाहे बरस लो !"

इस पलि गीत में जो ओज, जो अदम्य उत्साह, जीवन के प्रति जो सच्ची आस्था और विघ्न बाधाओं के प्रति जो उपेक्षा है, वह हमारे लोक गीतों की शोभा और शृंगार है, मौलिक आधार है।

इस प्रकार के गीत किसानों के अपने सपनों को साकार रूप देने के प्रयास के प्रमाण होते हैं। अन्य भाषाओं में भी ऐसे गीत मिलते हैं। हमने अभी अभी जिन गीतों की व्याख्या की है, उनमें इसी प्रकार की महत्वाकांक्षा अथवा कामना को अभिव्यक्ति मिली है।

खेती सर्वोत्तम धन्धा मानी जाती है। खेतिहर अन्नदाता होता है। वह सारे समाज का पेट भरने के लिए अन्न उपजाता है। मगर उसकी आवश्यकताएँ कितनी कम होती हैं? वह अपने खेत को प्यार करता है, गाय बैलों को प्यार करता है, अपनी छोटी सी गृहस्थी को प्यार करता है और अपनी प्राण प्यारी पत्नी का सच्चा जीवन साथी बनता है। दोनों साथ मेहनत करते हैं। वह पुर हांकता है, तो उसकी पत्नी पुर खींचती है; वह खेत जोतता है तो उसकी स्त्री दाने बिखेरती है। वह खेत गोड़ता है, तो उसकी पत्नी रोटी माठा लेकर खेत की डांड़ मेंड़ पर पहुँचा जाती है। उनके जीवन

में श्रम और शृंगार का सहज समन्वय दिखायी देता है; कोई काहिल, सुस्त और नाकारा नहीं है, कोई, मुफ्त की रोटी नहीं तोड़ता। उनका श्रम उन्हें संतोष देता है। उनके गीत उनके श्रम को सार्थक बनाते हैं। उनके गीत उनके जीवन के अंग हैं, अविभाज्य अंग।

सम सामयिकता

लोक गीतों पर सम-सामयिकता का अत्यधिक प्रभाव रहता है। यदि हम लोक गीतों को ध्यान में रखें और उनका विश्लेषण करें तो हमारे सामने यह बात अधिक असानी के साथ स्पष्ट हो जायगी। अब तक जितने भी लोक गीत संग्रहीत हो चुके हैं उन पर दृष्टिपात करें तो हमें अनेक गीत इस प्रकार के मिल जाएँगे जो अपने समय की राजनीतिक चहल पहल, आक्रमणों और संघर्षों और उनकी प्रतिक्रियाओं की कहानी कहते हैं। उदाहरणार्थ, पंडित राम नरेश त्रिपाठी के 'ग्राम गीत' में संग्रहीत एक गीत देखिए—

घोड़े चढु दुलहा तूँ घोड़े चढ़ु, यहि रन बन में।
दुलहा, बाँधि लेहु ढाल तरुवारि, त यहि रन बन में॥
पहिरो पियरी पितम्मर यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु लट पट पाग, त यहि रन बन में॥
कैसे क बाँधौं पाग, त यहि रन बन में।
दुलहिनि, मरम न जानौं तोहार, त यहि रन बन में॥
जतिया तो हमरी पंडित कै, यहि रन बन में।
दुलहा, मुगल क डरिया लुकान, त यहि रन बन में॥
मारि डारेनि भाई औ' बाप, त यदि रन बन में॥
दुलहा, मुगल क डरिया लुकान, त यहि रन बन में॥
यतनी बचनिया क सुनतइ, यहि रन बन में।
दुलहा घोड़े पीठि लिहिन बैठाइ, त यहि रन बन में॥
यक बन गइलैं, दुसर बन यहि रन बन में।
दुलहा तीसरे में लागि पियासि, त यहि रन बन में॥

अरे अरे जनम संघाती, त यहि रन बन में।
दुलहा, यक बूँद पनिया पियाव, त यहि रन बन में॥
उँचवै चढ़ि के निहारिन यहि रन बन में।
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि, त यहि रन बन में।
दुलहिनि ठाढ़े हैं मुगल पचास, त यहि रन बन में॥
अरे अरे जन्म संघाती, त यहि रन बन में।
दुलहा, एक बूँद पनिया पियाव, त यहि रन बन में॥
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया, त यहि रन बन में॥
यतना बचन सुनि पायनि, त यहि रन बन में।
दुलहा खींच लोहेन तरुवरिया, त यहि रन बन में॥
ठाढ़े एक ओर मुगल पचास, त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल, त यहि रन बन में॥
रामा जूझै हैं मुगल पचास, त यहि रन बन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेलि, त यहि रन बन में॥
पतवा के दोनवाँ लगायनि, यहि रन बन में।
दुलहिन पनियाँ पियहु डभकोरि, त यहि रन बन में॥
पनिया पियै दुलहिन बैठीं, त यहि रन बन में।
दुलहा पटुकन करैं बयारि, त यहि रन बन में॥
दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि, त यहि रन बन मे।
दुलहा हम तोहरे हाँथ बिकानि, त यहि रन बन में॥
यतनी बचनियाँ के साथ, त यहि रन बन में।
दुलहिनि मलवा दिहिन गर डारि, त यहि रन बन में॥

इस गीत में परम्परागत वीर पूजा की भावना तो है ही, इसमें तत्कालीन समाज की दुरावस्था और अव्यवस्था का चित्र भी मिलता है। वह मुगलों और हिन्दुओं के संघर्ष का युग था। मुग़ल आक्रमणकारियों ने राजकीय स्तर पर जो कुछ किया इतिहास में उसका वर्णन मिलता है। परन्तु सामाजिक जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, पारिवारिक और

कौटुम्बिक स्तर पर भी उन नवागन्तुकों के सम्पर्क का क्या प्रभाव पड़ा यह जानने के लिए हमें तत्कालीन लोक गीतों की शरण लेनी पड़ेगी। हमें यह भली भाँति जानना चाहिए कि जिस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी और पद्मावती के कथानक को लेकर इतिहास में ही नहीं साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत कुछ लिखा गया (पद्मावत काव्य हमारे सामने है), उसी प्रकार इस घटना के प्रभाव में ही लोक गीतों में भी अनेक आख्यान प्रस्तुत हुए। हम यदि इन प्रबन्ध गीतों को पढ़ें तो हमें आज भी रोमांच हो जाएगा। इसी तरह मुग़ल सिपाहियों की लूट मार, अत्याचार, अनाचार के आधार पर अनेक गीत रचे गए। किसने इन गीतों की रचना की यह हम नहीं जानते। परन्तु ये गीत लोक सम्पत्ति के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए और आज भी वे अगणित लोगों के जिह्वाग्र पर सुशोभित हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

ऊपर हमने जिस गीत को उद्धृत किया है उसमें सिर्फ़ यह कहा गया है कि जंगल में मुगलों के डर से एक लड़की छिपी हुई थी। उसके माता पिता की हत्या उन आततायियों ने कर दी थी। परन्तु वे उस ब्राह्मण कन्या को न छू सके थे। उस जंगल में एक बहादुर घोड़सवार आ निकला। लड़की ने उसे सारा हाल बताया। घोड़ सवार ने उसकी रक्षा करने का ज़िम्मा लिया। घोड़े की पीठ पर उस लड़की को बिठाकर वह वीर कुछ दूर चला ही था कि उस लड़की को प्यास लग आयी। उधर पचास मोग़ल सिपाही भी दिखाई दे गये। उस घोड़ सवार की बहादुरी की परीक्षा की घड़ी निकट आ गयी। उसने मोग़लों से युद्ध करके उन्हें परास्त कर दिया। फिर लड़की को पानी पिलाया। अब उस लड़की को उस घोड़सवार की हिम्मत और वीरता का प्रमाण मिल चुका था। इसलिए उसने इस बहादुर घोड़सवार के गले में जयमाला डाल दी।

उस युग में इस प्रकार के गीत सारे देश में बने होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। जहाँ जहाँ इन मोग़लों के चरण पड़े होंगे, जहाँ जहाँ इस प्रकार के अत्याचार, अनाचर हुए होंगे वहाँ वहाँ जन मानस में इसी प्रकार के भाव उठे होंगे और कण्ठों से निकले होंगे। हिन्दी क्षेत्र में, राज-

स्थान से मिथिला तक, इस प्रकार के गीत पाए जाते हैं। इन गीतों की सार्वभौमिकता और व्यापकता उस समय के पूरे समाज में व्याप्त अराजकता और अनाचारों का प्रमाण है।

सती प्रथा का अन्त अंग्रेजों के ज़माने में हुआ। इसके पहिले यह प्रथा किसी न किसी रूप में सारे देश में व्याप्त थी। यों तो इस प्रथा का इतिहास बहुत पुराना है। परन्तु अंग्रेजी शासन के कुछ समय पहिले यह प्रथा इसलिए अधिक व्यापक हो गयी थी कि देश और समाज में व्याप्त अराजकता के कारण नारी समाज अपने को सर्वथा अरक्षित समझने लगा। अपनी मान मर्यादा को बचाने के लिए आग में जल मरने के सिवाय उसके पास कोई अन्य उपाय नहीं रह गया था। इसलिए सती होना दैनिक जीवन का अंग बन गया था। इस प्रकार के अनेक लोक गीत हमें मिलते हैं जिनमें 'सत' की रक्षा के लिए अपने शरीर को अग्नि में झोंक देने वाली नारियों की पूजा प्रशंसा की गयी है। यह भी समसामयिक स्थिति को चित्रित करने वाले लोक गीतों की पुरानी परम्परा का एक चिह्न है।

सुखी परिवार

एक मारवाड़ी गीत है—

आज म्हारी ईमली फल लायो।
बहू रिमझिम महलां से उतरी, बहू कर सोला सिंगार।
आज म्हारी ईमली फल लायो।
म्हारा सासू जी पूछया ए बहू, थारे गहणारो अर्थ बताव।
सासू गहणा नैके पूछौ, गहणा म्हारो देवर जेठ।
गहणा म्हारी भोली बाई जीरो वीर।
आज म्हारी ईमली फल लायो।
म्हारा ससुरो जी घर का राजा, सासु जी मोरी अर्थ भण्डार।
म्हारा जेठ बाजू बन्द बांकड़ा, जिठाणी म्हारी बाजू बन्द की लूँगी।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हारी देवर चूड़लो दांत को, देवराणी म्हारी चूड़लारी टीप।
म्हारा कंवर जी मोती बाटला, कुल बहू मोरा मोत्यां बीच की लाल।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हारी धीयज चोलीपान की, जवांई म्हारे चमेल्या फूल।
म्हारी ननद कसूमल कांचनी, नणदोई म्हारो गजमोत्यां रो द्वार।
आज म्हारी इमली फल लायो।

म्हारा सायब सिर को सेवरी, सायवानी म्हें तो से जारा सिणगार।
म्हें तो वार्या जी बहू जी थारे बोलने, लडायो म्हारे सो परिवार।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हें तो वार्या जी सासू जी थारी, कूखनें थे जो आया अर्जुन भीम।
म्हें तो वार्या जी बाई जी थारी गोदने, थे खिलाया लछिमण राम।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

यह गीत शीलवती बहू और उस सुखी परिवार का चित्र पेश करता है जो सचमुच आदर्श है। गीत का भावार्थ यह है—आज मेरी ईमली में फल आया है। सोलहों शृङ्गार करके छमछम करती बहू महल से उतरी। उसे इतना प्रसन्न देखकर सास ने पूछा, "हे बहू, तुम्हारे पास क्या गहने हैं तुम आज इतनी प्रसन्न क्यों दिख रही हो?"

बहू ने तपाक से उत्तर दिया, "मेरी सास जी, आप मेरे गहनों की बात क्या पूछती हैं? मेरे असली गहने तो मेरे देवर और जेठ हैं। मेरा गहना तो मेरी सुशील ननद का प्यारा भाई है। मेरे ससुर तो मेरे घर के राजा हैं। मेरी सास जी घर की मालकिन हैं, अन्नपूर्णा हैं; मेरे जेठ जी तो बाजूबन्द हैं और जेठानी जी बाजूबन्द की लटकन, मेरा देवर मेरी हांथी दांत की चूड़ी है और देवरानी उसकी टीप। मेरा पुत्र मोतियों का हार है और मेरी बहू मोतियों के बीच का लाल। मेरी कन्या जरीदार चोली है और मेरा दामाद चमेली का फूल। मेरी ननद कुसुम्बी चोली है और ननदोई गजमुक्ताओं का हार।

"मेरे स्वामी सिर के मुकुट हैं और मैं उनकी सेज का सिंगार हूँ (सभवा में चमके पिय की पगरिया, सेजिया पर बिंदिया हमार !)।"

बहू की इन प्यारी प्यारी बातों को सुनकर सास को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने स्नेह से कहा, "बहूरानी, मैं तो तुम्हारी मिश्री जैसी बोली पर निछावर हूँ। तुमने मेरे सारे परिवार को सच्चा सुख और आनन्द प्रदान किया है। (माता कौशल्या ने इन्हीं शब्दों में सीता जी को भी तो सदैव याद किया था !)

बहू कब चुप रहने वाली थी ? उसने अपनी सास को फिर शानदार और आदर तथा श्रद्धा से भरा उत्तर दिया, "सास जी, मैं तो तुम्हारी कोंख पर निछावर हूँ। तुमने तो भीम और अर्जुन जैसे प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये हैं। और हे ननद, मैं तुम्हारी गोद पर निछावर हूँ। तुमने तो राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को अपनी गोद में खेलाया है।"

इस मारवाड़ी लोक गीत में सास-बहू तथा ननद-भौजाई के आपसी सम्बन्ध तथा पति, ससुर और देवर के प्रति श्रद्धा, भक्ति, गर्व और स्नेह का जो सजीव चित्र रखा गया है, वह आदर्श ही नहीं सत्य भी है। अक्सर लोक गीतों में सास बहू और ननद भौजाई के झगड़ों टन्टों को ही चित्रित किया जाता है। परन्तु ऐसे भी अनेक गीत मिलते हैं जिनमें उपर्युक्त गीत की ध्वनि रहती है। हमारे परिवारिक जीवन का यह शुक्ल पक्ष कितना मोहक और प्रेरणा पूर्ण है !

वसुधैव कुटुम्बकम्

हमारे गाँवों में कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने, बाग लगवाने आदि की प्रथा सदा से रही है। ये सारे काम पुण्य के लिए, सारे गाँव वालों के उपयोग के लिए होते थे। इनका मालिक कोई एक व्यक्ति नहीं होता था। इसी के आधार पर एक अति प्रसिद्ध लोक गीत है—

कुंअवा खोदाए कवन फल, हे मोरे साहब।
झोंकवन भरैं पनिहारिन, तबै फल होइहै ॥
बगिया लगाये कवन फल, हे मोरे साहब।

राहे बाट अमवा जे खैहैं, तबै फल होइहैं ॥
पोखरा खोदाये कवन फल, हे मोरे साहब ।
गौआ पियैं जूड़ पानी, तबै फल होइहै ॥
तिरिया के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब ।
पुतवा जनम जब लैहैं, तबै फल होइहैं ॥
पुतवा के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब ।
दुनियां अनन्द जब होई, तबै फल होइहैं ॥

यह गीत अपनी कहानी खुद कहता है, अपना आदर्श स्वयं ज्ञापित करता है, अपने उद्देश्यों की घोषणा स्वयं करता है । कुआं खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड़ लगे । बाग लगवाने का फल यह है कि राहगीर मनचाहा आम तोड़कर खांय । पोखरा बनाने की सार्थकता इसमें है कि गायें आकर ठंडा पानी पी सकें । स्त्री के जन्म को सुफल तब माना जायगा जब उसकी गोद भरे और आंचल सफल हो और बेटा का जन्म भी तभी सार्थक होगा जब उससे सारे संसार को सुख और आनन्द प्राप्त हो ।

इस गीत में जोकुछ कहा गया है वही ग्रामीणजीवनका सबसे ऊँचा आदर्श है । ग्राम संस्कृति इसी आदर्श के सहारे इतने सहस्रों वर्षों तक जीती जागती रही है । जो लोग समझते हैं कि हमारी ग्राम संस्कृति की प्राण-वायु कमजोर होती जा रही है और उसके दिन अब इने गिने ही रह गए हैं वे इस गीत को गौर से पढ़ें और देखें कि हमारा ग्रामीण समाज आज भी इन आदर्शों की रखवाली कर रहा है अथवा नहीं । नगर के शिष्ट समाज की संस्कृति और सभ्यता की चकाचौंध में पलने वाले जो लोग ग्राम संस्कृति का उपहास करते हैं, उसे हीन और मरणशील समझते हैं, उन्हें इस गीत की पुकार और चुनौती सुननी चाहिए और हो सके तो इससे प्रेरणा भी लेनी चाहिए ।

गीत की अन्तिम पंक्तियों में दो बातें सबसे अधिक महत्वपूर्ण कही गयी हैं । नारी के जीवन का साफल्य किस बात में है ? बहुत से धन सम्पदा पर प्रभुता प्राप्त करने में ? बहुत अधिक सुन्दर, आकर्षक होने में ?

नहीं, नारी के जीवन की सफलता इस बात में है कि वह ऐसी सन्तान उत्पन्न करे जिसके कारण सारे संसार को, केवल कुटुम्ब और परिवार को ही नहीं, आनन्द हो, सुख मिले। उसी मां की कोख धन्य है जो ऐसी सन्तान को जन्म दे, उसी मां का दूध धन्य है जो ऐसी सन्तान को पाल-जिलाकर मानव समाज की सेवा के लिए तैयार कर दे। ऐसी ही सन्तान का जन्म लेना सार्थक है जो अपने इस कर्तव्य को पूरा करने की क्षमता रखती हो। सोहर का यह गीत सचमुच कितना अर्थपूर्ण, कितना मंगलमय, कितना पवित्र और कितना ओजपूर्ण है!

ग्राम संस्कृति

ग्राम संस्कृति को उजागर करने वाला एक दूसरा गीत देखिए—

द्वारेन द्वारे बरुआ फिरैं, बखरी पूछैं बबा की हो।
द्वारेन उनके है कुइयां, भीतीं चित्र उरेही हो॥
आंगन तुलसी क बिरवा, बेदवन झनकारीं है हो।
सभवन बैठे बाबा तुम्हरे, बैठे पुरवै जनेउवा हो॥

इस गीत में एक उच्च धर्म-प्राण ब्राह्मण कुल का चित्र है। एक ब्रह्मचारी गांव में, दरवाजे, दरवाजे घूमकर बाबा के मकान का पता पूछ रहा है। (सुनते हैं कुमारिल भट्ट ने मंडन मिश्र का पता भगवान शंकराचार्य को इसी प्रकार बताया था, जिस प्रकार इस गांव का ही कोई प्राणी बाबा के घर का पता इस ब्रह्मचारी को बता रहा है!) यह गीत जनेऊ का है। बाबा के घर की पहिचान क्या है? उनके दरवाजे पर कुँआ है। दीवारों पर चित्र बने हुए हैं, आंगन में तुलसी का पेड़ है, घर में वेद ध्वनि गूंज रही है और बाबा बैठे हुए जनेऊ बना रहे हैं। गृहस्थ ब्राह्मण के घर का इससे अधिक सुन्दर और पूर्ण चित्र क्या हो सकता है? खेतिहर मजूरों, गरीब किसानों, हरिजनों आदि के घरों के चित्र तो गीत-गीत में मिलते हैं। उनके सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना नहीं है।

लोक गीतों में परिवार के विभिन्न सदस्यों के आपसी सम्बन्धों के बारे में अक्सर चर्चा मिलता है। पति-पत्नी तथा भाई-बहिन के सम्बन्ध की

महत्ता लोक गीतों की जान है। भाई बहिन को कितना मानता है इसका प्रमाण यह है कि वह अपने भान्जे को डाँट फटकार भी नहीं सकता। लोगों का विश्वास यह है कि यदि मामा अपने भान्जे को मार दे तो उसका हांथ कांपने लगता है। मामा भान्जे के सम्बन्ध के आधार पर निर्मित यह लोक गीत देखिए—

लम्बी लम्बी गैया क डूड़ी, डूड़ी सींग।
चरै चोथै जाय गैया जमुना के तीर॥
चरि चोथि गैया पानी पियै जाइ।
बाघ बघिनियां घाट छेंकैं आइ॥
छोड़ो रे बघवा मोरे पनि घाट।
हम हैं पियासी पनियां पीए देउ॥
घर से आइब बछरु पियाइ।
हमका दिहे जा साखिया गवाह॥
चांद सुरुज दूनौं सखिया गवाह।
अइबै हे बावा बछरु पियाइ॥
आउ बच्छा रे पीले दूध डभकोरि।
सबेरे हम जावै अपने नैहर की ओर॥
रोज तो आव माई होंकरत चोंकरत।
आज तोर मनवा काहे मलीन॥
आजु की रात बच्छा रहबै तोहरे पास।
होत बिहान होबै बाघे क अहार॥
जो तूं जाबिउ माता बाघ के पास।
हमहुँ क लिहेउ गोहनवा लगाय॥
आगे आगे बछरु कुलाचत जाय।
पीछे पीछे गैया विषमातल जाय॥
जाइके पहुँची गैया बाघ के पास।
मामा कहि बाछा किहा सलाम॥

आवहु मोर मामा मोहिं भच्छ लेहु।
पीछे भच्छेहु आपन बहीन॥
गैया मोर बहिनी, बछौवा मोर भैने।
जाइके बाछा रहो केदरी के बन में॥—ग्राम गीत

एक लम्बी गाय है। उसकी छोटी-छोटी सींग है। वह घास चरने के लिये जमुना के तीर पर जाया करती थी। एक बार की बात है। घास चरने के बाद गाय पानी पीने गयी। वहाँ पर बाघ और बाघिन ने आकर उसका रास्ता रोक लिया। गाय ने उनसे प्रार्थना की, "हे बाघ, तुम मेरा घाट छोड़ दो। मुझे बहुत प्यास लगी है। मुझे पानी पीने दो। जब मैं अपने बच्चे को दूध पिलाकर घर से वापिस आ जाऊँगी तो तुम मुझे खा लेना।"

बाघ ने उत्तर दिया, "यदि तुम अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए जाना चाहती हो तो जाओ। परन्तु तुम गवाह साखी दिये जाओ।"

गाय ने कहा, "चांद और सूरज मेरे साक्षी रहेंगे।" इस पर बाघ ने गाय को घर जाने दिया। घर पहुँच कर गाय अपने बच्चे से बोली, "मेरे बच्चे, आ, तू जी भर के दूध पी ले, सबेरे मैं अपने नैहर की ओर जाऊँगी।"

गाय अपने बच्चे से अपने मरने की बात छिपाना चाहती थी। परन्तु बच्चा भांप गया। उसने पूछा, "मां, रोज तो तुम उछलती कूदती हुंकरती मेरे पास आती थीं, आज क्यों तुम दुखी लग रही हो?"

आखिर विवश होकर गाय को कहना ही पड़ा, "बेटा, आज ही रात भर मैं तुम्हारे पास रहूँगी। सुबह होते ही मैं बाघ का आहार बन जाऊँगी।"

बच्चे ने कहा, "जब तुम बाघ के पास जाना तो मुझे भी साथ ले लेना, मां।"

सबेरा हुआ। आगे आगे गाय का बच्चा कुलांचें भरता हुआ चला जा रहा था। पीछे पीछे गाय अधमरी सी चली जा रही थी। किसी कारण बच्चे के मन में विश्वास और उत्साह था। परन्तु गाय तो यही समझती थी कि अभी थोड़ी देर बाद बाघ उसे और उसके बच्चे को खा

जाएगा। थोड़ी देर में गाय बाघ के पास पहुँची। गाय के बच्चे ने आगे बढ़कर बाघ को 'मामा' शब्द से सम्बोधित करके सलाम किया और बोला, "आओ मामा, अपने भान्जे को खा लो। बाद में अपनी बहिन को भी खा लेना।"

बाघ स्तम्भित रह गया। फिर अपने को सम्भाल कर बोला, "गाय मेरी बहिन है और बछवा मेरा भान्जा है। जाओ मेरे भान्जे, तुम कदली बन में मौज करो।"

यह गीत अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें गाय के वचन पालने पर ही जोर नहीं दिया गया है, बल्कि इस बात पर बल दिया गया है कि 'मामा' कहे जाने के बाद शेर का दिल भी पिघल जाता है। वह अपने खाद्य पदार्थ को बहिन मान लेने पर अभय दान दे देता है। वह किसी भी स्थिति में रहे, कभी अपनी बहिन और उसकी सन्तान के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता। जब शेर बाघ जैसे हिंस्र पशुओं का यह हाल है, तो मनुष्य का क्या हाल होगा? क्या मनुष्य कभी भी, किसी भी हालत में, अपनी बहिन का अनिष्ट कर सकता है? आखिर बहिन अकारण ही भाई को 'बीरन' नहीं कहती! और, भाई भी अपनी बहिन के लिए अपनी जान की बाजी यों ही नहीं लगा देता!

यह गीत कितना अर्थपूर्ण, कितना सारगर्भित है यह बताने की जरूरत नहीं।

काम और शृंगार

एक गरीब स्त्री की कार्यव्यस्तता और असहायावस्था का चित्र देखिए—

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा।
सांझ भई दिया बाती की बेरिया,
राजा दुहावे लागे गइया, मैं जेवना बनाऊँ,
मोरे राजा॥

आधिरात चपरसिया का फेरा,
राजा बिछावयं सुख सेजा, मैं जतवा बहारौं,
मोरे राजा।
भोर भए चुहचुहिया जो बोलै,
राजा संवारै सिर पागा, मैं जांते पर जूझऊँ,
मोरे राजा।

गरीब स्त्री को अपना सारा काम काज अपने हाथों से ही करना पड़ता है। वह बेचारी सुबह से रात तक पिसती रहती है। उसे शृंगार करने, अपने पति के साथ उठने, बैठने तक का समय नहीं मिलता। इस बात के लिए वह तरस कर रह जाती है कि उसे अपने स्वामी के पास कुछ समय रह पाने का अवसर मिलता। इस गीत में दुखियारी गरीबिनी यही रोना रोती है। वह कहती है, "शाम होने को आ गयी। बादल घिरते आ रहे हैं। अब मुझे दिया-बत्ती करनी है। मेरे राजा गैया दुहने में लग गए हैं और मैं भी भोजन बनाने जाती हूँ। आधी रात का समय आया कि पहरा पड़ने लगा। मेरा पति मन मारकर रह गया। उसके बाद उसने किसी तरह बिस्तरा ठीक भी किया तो मैं जांते के पास झाड़ू लगाने गई। भोर हो गई। चुहचुहिया चिड़िया बोलने लगी। राजा अपने सिर पर पगड़ी बांधने लगे। अब उन्हें अपने काम पर जाना था। और, मैं भी विवश होकर जांते से जूझने लगी। इस प्रकार, 'चलो बस हो चुका मिलना, न वह खाली, न मैं खाली।"

गांव की गरीबिनी की व्यस्तता और कार्याधिक्य का यह चित्र कितना सत्य और स्वाभाविक है! कल्पना कीजिये उस बेचारी तरुणी की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति की, जो इस प्रकार एक के बाद दूसरा दिन इसी आशा से काटती जाती है कि आज नहीं तो कल उसे 'उनसे' मिलने का अवसर अवश्य मिलेगा। परन्तु वह हतभागिनी अपना दिल मसोसकर रह जाती है, अपने पति से मिलने का उसे मौका ही नहीं मिलता, श्रम और स्नेह-संयोग का यह अन्तर्विरोध कितना विनाशकारी है!

विकृत स्वभाव

लोक गीतों में विभिन्न प्रकार के स्वभाव की स्त्रियों के चित्रण हमें मिलते हैं। यहां एक कर्कशा नारी का चित्र देखिए, कितना सजीव, किस कदर सच्चा है यह चित्र—

धनि धनि रे पुरुष तोरि भाग, करकसा नारि मिली !
सात घरी दिन रोय के जागी, लिहिन बढ़नियां उठाय।
निहुरे निहुरे अंगना बटोरे, घर भर को गरियाय।
करकसा नारि मिली ॥
बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइलैं तीन।
आवा पाहुन घर में बैठ, कंडा लाँऊ बीन।
करकसा नारि मिली ॥
हंडिया भरके अदहन दिहलीं चाउर मेरव्लीं तीन।
कठवत भरि के मांड़ पसवलिन, पिय हिलोर हिलोर।
करकसा नारि मिली ॥
सात सेर के सात पकवलिन, नौ सेर का एक।
तू दहिजरउ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक।
करकसा नारि मिली ॥
डेहरी बैठे तेल लगावैं, सेंदुर भरावे मांगि।
आंचर पसारि के सूरज मनावैं, होंइहों कब मैं रांड़ि।
करकसा नारि मिली ॥

—ग्रामगीत

इस गीत में उन स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन है जो कर्कशा होती हैं, जिन्हें अकारण सबसे झगड़ा करने, सब को बुरा भला कहने, सबके नाश की कामना करने में ही मज़ा आता है। हर बात में उन्हें नाराज़ होने का एक कारण मिल जाता है। लगता है यदि उन्हें सबको कोसने, बुरा भला कहने, गालियाँ देने का अवसर न मिलेगा तो उनका पेट फूलने लगेगा। उनका गला घुँटने लगेगा।

ऐसी स्त्रियाँ आर्थिक, सामाजिक या व्यक्तिगत कारण से ही ऐसा व्यवहार नहीं करतीं। मनोवैज्ञानिक यदि इनकी मनोदशा का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि वे किसी विशेष प्रकार के मनोविकार का शिकार होती हैं। बचपन से ही यह विकार उनके मन में पलता रहता है। समय पाकर यह विकसित होता है और फिर उनके व्यक्तित्व को छा लेता है, उनके स्वभाव का प्रधान अंग बन जाता है। इस गीत में ऐसी ही झगड़ालू, कर्कशा नारी का चित्र उपस्थित किया गया है।

"हे पुरुष, तेरा धन्य भाग्य है जो तुझे ऐसी कर्कशा नारी मिली है! सात घड़ी तक वह दिन में रोती है, फिर झुक झुक कर झाड़ू लगाती है और घर भर को गाली देती चली जाती है। सारा घर उजाड़, वीरान, टूटा-फूटा सा दिखता है। दीवार पर कौवा रोता है। कहीं उस घर में तीन मेहमान आ गए तो उन्हीं से कहती है, 'तुम लोग बैठो मैं उपले लेने जाती हूँ।' उसकी गृहस्थी का यह हाल है। उपले लाकर उसने चूल्हा जलाया और उस पर हाँडी भरकर पानी चढ़ा दिया और उतने पानी में तीन दाना चावल डाल दिया। फिर कठौता भर मांड़ निकालकर अतिथियों को पीने के लिए दे दिया। मेहमानों के लिये ही उसका व्यवहार ऐसा नहीं है। उसने सात सेर की सात रोटियाँ तैयार की और नौ सेर की एक रोटी, फिर अपने पति को गालियाँ देती हुई बोली 'तुमने तो सात रोटियाँ खायीं और मैंने सिर्फ एक रोटी खायी। तुम नीच घराने के हो, मैं तो उच्च कुल की कन्या हूँ, इसीलिये मैंने एक रोटी खाकर सब्र कर लिया।' इतना कहकर ही वह चुप नहीं रहती। वह दरवाजे की देहली पर बैठकर सिर में तेल लगाती है और मांग में सिन्दूर भरती है। इस निर्लज्जता के साथ शृंगार करके वह आंचल फैलाकर सूर्य भगवान से प्रार्थना करती है कि कब वह रांड होगी (अर्थात् उसका पति कब मरेगा)!"

कर्कशा नारी का यह चित्रण कितना वीभत्स है, परन्तु साथ ही वह सच्चाई के कितना निकट है! जिस प्रकार की नारी का चित्रण इस

व्यंगात्मक गीत में किया गया है वैसी नारियाँ ग्रामीण समाज में तो मिलती ही हैं, नागरिक समाज में भी इनकी कमी नहीं है।

कुल लक्ष्मी

श्री कृष्णादेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी ग्राम गीत' में दो छोटे छोटे उड़िया गीत उद्धृत किये हैं जिनमें राम और सीता अति साधारण परिवार के किसान और उनकी स्त्री के रूप चित्रित किए गए हैं। गीतों की सरलता के पीछे छिपे उनके परिवारिक जीवन की सच्ची झाँकी देखिए—

दौदरा माठिया हाते धारि करि
खीर दुहिबाकु सीताया गला। मो राम रे।
सबु खीर जाको तले बहि गला।
सीताया ए कथा जानी न पारीला। मो राम रे।
बौहड़ीला राम हल काम सरि,
खीर मन्दे-वेगे सीताकु मगीला। मो राम रे।
धाई धाई सीताया पाखकु अईला,
घोइतांकु सब कथारी कहिला। मो राम रे।
रामंक आंखी टी रंग होइ गला
मन कि तो लो बाइया हेला। मो राम रे।

फूटे हुए बर्तन को लेकर सीता जी दूध दुहने के लिए गयीं। वह दूध दुहती रहीं और दूध नीचे बहता रहा। परन्तु सीता जी को इस बात का पता न था। हल चलाकर राम खेत से घर लौटे तो उन्होंने धीरे से सीता से दूध मांगा। सीता दौड़कर आयीं और उन्होंने राम को सही बात बतायी। राम की आँखें लाल हो गयीं और वह कहने लगे, "तुमको क्या हो गया है? तुम पागल तो नहीं हो गयी हो, मन को स्थिर रखो न।"

राम ने थक कर घर वापिस आने पर दूध न पाने के कारण सीता के ऊपर जो क्रोध दिखाया उससे देखकर हमें स्वयं अपनी स्थिति का ध्यान आ जाता है। क्या ऐसी स्थिति में हम भी अपनी पत्नी से ऐसी बातें नहीं

कहते, इसी प्रकार क्रोध नहीं दिखाते ? परन्तु इस ऊपरी क्रोध के तल में कितना प्रांजल स्नेह, कितना अगाध और प्रगाढ़ प्रेम भरा होता है ?

एक अन्य उड़िया गीत लीजिये और उसकी मार्मिकता देखिए—

सरि गला दीप-र तेल
कि परि दीप जालिबी । महाप्रभु से ।
तेल आर्गा वावु जाओ हे राम
से तेल दीप, रे ढालिवी । महाप्रभु से ।
सुना-र दीप रे चन्दन तेल
सीता या दीप जाल् छी । महाप्रभु से ।
दीप जाली जाली सीताया
माघर कथा मालछी । महाप्रभु से ।

सीता कहती हैं, "तेल खत्म हो गया है । मैं दीपक कैसे जलाऊँ ? हे राम, तुम जाओ और तेल ले आओ । उसी तेल को मैं दीपक में डालूँगी ।" सोने का दीपक है, चन्दन का तेल है, जिससे सीता दीप जला रही हैं । दिया जलाते जलाते सीता को अपनी माँ की याद आ जाती है !

ऐसी स्थिति में माँ की याद आना कितना स्वाभाविक है ! कभी वह इसी समय अपनी मां के साथ साथ अपने नैहर में दीप जलाया करती थी । तमसावृत्त अंधियारी से घिरे दीपक की लौ में माँ का चेहरा किस प्रकार उद्दीप्त हो जाया करता था ! लक्ष्मी स्वरूपा, अन्नपूर्णा, स्नेह की प्रतिमा मां, उस समय कितनी असीम श्रद्धा के साथ, आंचल पसार कर उस दीप से समस्त परिवार वालों, गांव और देश वालों के मंगल की कामना किया करती थीं ! माँ की वे स्नेहार्द्र आंखें और झुकीं पलकें, बुदबुदाते ओंठ, बिनय से उठे हांथ, फैला हुआ आंचल और सामने घोर गहन अन्धेरे के माथे पर टिमटिमाता प्रकाश दीप ! कितना मनोरम, पवित्र दृश्य था वह ! इस लोक गीत की सीता ने बचपन से वह दृश्य नित्य प्रति देखा था । वह दृश्य उसके मानस पटल पर अमिट बनकर खिंच गया था । अब वह स्वयं गौरी से लक्ष्मी बनी है । मां की वह पावन परम्परा अब उसके

आँचल में प्रश्रय पा रही है। उस निर्बाध, अटूट ज्योति माला की एक कड़ी उसका वह दीपक भी है जिसको प्रकाशित करना, जिसकी रक्षा करना, उसका धर्म है। इसी धर्म के पालन के लिये तो उसे भी नारी जाति में ही जन्म मिला था। कल वह सीता बालिका थी, मां के साथ साथ, उसके इशारों पर वह दीप जलाती थी। आज वह विवाहिता कुल-वधू, कुल-लक्ष्मी है। आज मां के हाथों का वह ज्योति दीप उसने अपने हाथों में, अपने आंचल के साये में, सम्हाल लिया है। इस समय उसे मां की सीख, मां का उदाहरण, मां की चेतावनी, और मां की आंखों के चिर वरदानी आंसू याद आ रहे हैं! वह कामना कर रही है, "मां मुझे शक्ति दे कि मैं तेरी ही तरह परिवार वालों, गांव और देश निवासियों की मंगल कामना इस ज्योति दीप से करती रहूँ।"

सरि गला दीपर तेल

कि परि दीप जालिबी—सुनते ही 'मीर' की प्रसिद्ध पंक्तियां याद आ जाती हैं :

शाम ही से बुझा सा रहता है।
दिल है गोया चिराग़ मुफ़लिस का।

परन्तु ज्यों ही राम तेल ले आते हैं और सीता उस तेल को दीप में डालती हैं, त्यों ही दीप सोने का हो जाता है, तेल चन्दन का। राम के प्रयत्न और सीता के स्पर्श से ही दीप सोने का हो जाता है और तेल चन्दन का हो जाता है। कुल लक्ष्मी की यही तो शान है, यही तो प्रभाव है, यही तो उसकी मर्यादा का अर्थ है। इसी के लिए तो सीता की माता ने बचपन से ही उसे अपने साथ-साथ रखकर दीपक जलाना सिखाया और अपनी ज्योतिर्मय परम्परा से उसका शृंगार किया था। आज उसी ज्योतिर्मय, मंगलमय परम्पराओं से मंडित सीता दीप जलाते समय अपनी मां को याद कर रही हैं!

विवाह की समस्या

हमारे गाँवों में विवाह की समस्या बड़ी कठिन रही है। दहेज की प्रथा के कारण योग्य वर ढूँढ़ पाना प्रायः असम्भव ही माना जाता रहा है।

यदि किसी कन्या के योग्य घर बर मिल जाय तो वह कन्या ही भाग्यबती मानी जाती है। इसी कारण कन्या माता पिता की चिन्ता का कारण रही है। वर ढूँढ़ने की परीशानियों का वर्णन करने वाले अगणित लोक गीत हमें ऐसे मिलते हैं, जिनको पढ़कर मन की चिन्ता और उदासी बढ़ जाती है और कभी कभी तो आंखों में आंसू आ जाते हैं। जब पिता चारों ओर से निराश होकर घर लौटने पर अपनी बेटी से कहता होगा—

पूरब खोजलों बेटी, पच्छिम खोजलों,
अवरु ओड़ीसा, जगरनाथ।
चारो भुवन बेटी, तोहि बर खोजलों,
कतहीं ना मिले सिरीराम, ए।

—तो बेटी को कितनी ग्लानि होती होगी, उसको कितनी चोट लगती होगी, वह अपने को कितना कोसती होगी, अपने को कितनी अभागिनी समझती होगी!

दहेज की इस प्रथा के कारण समाज में अनमेल विवाहों की संख्या बढ़ गयी। अनमेल विवाहों का जो भी परिणाम हो सकता था, सामने आया। समाज में पापाचार, अत्याचार, बढ़ने लगा। कहीं वृद्ध के साथ फूल सी कोमल बच्ची का विवाह, कहीं प्रौढ़ा स्त्री के साथ नन्हें बच्चे की शादी-यह अवस्था आम हो गयी। इस प्रकार के अनमेल विवाह के फल स्वरूप दुख और संताप से पीड़ित स्त्री का हाहाकार इस गीत में सुनिए।—

बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा
बनवारी हो, रहरी में बोले ला सियार॥
खोंले के त चोली बन्द खोले ला किवार।
बनवारी हो, जरि गइले एड़ी से कपार॥
सुतै के त सिर वा सुतैला गोत नार।
बनवारी हो, जरि गइले एड़ी से कपार॥

रहरी में सुनि के सियरा के बोलिया ।
बनवारी हो, रोवे लगले लरिका भतार ॥
अंगना स माई अइली, दुअरा से बहिना ।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार ॥

इस गीत का अर्थ बताने की जरूरत नहीं । यह गीत प्रत्येक उस पिता के लिए चुनौती है जो अपनी बेटी का विवाह योग्य वर से नहीं, आयोग्य वर से कर देते हैं, जो वर की उम्र, स्वास्थ्य आदि का ध्यान न कर किसी प्रकार अपने सिर से बला टालते हैं ।

नौकरी

गांवों से अक्सर लोग दूर नौकरी करने जाते हैं । किसी जमाने में हमारे देश की धरती अन्नपूर्णा थी । आज नहीं है । किसी जमाने में कहा जाता था—

उत्तम खेती, मध्यम बान ।
निकृष्ट चाकरी भीख निदान ॥

पर समय की गति बदली और नौकरी ने समाज में आदर का स्थान प्राप्त किया । आज नौकरी पाने के लिए ही पढ़ाई लिखाई होती है । अंग्रेजी शासन का सबसे बड़ा बरदान यही था । नौकरी करने और उसमें गौरव अनुभव करने की परम्परा अब हमारे सामाजिक जीवन का महत्व पूर्ण अंग बन गयी है । अब बिना नौकरी के जीवित रह पाना ही कठिन हो रहा है ।

नौकरी पाते ही क्या होता है और नौकरी छूटते ही कैसी स्थिति हो जाती है इसका एक हल्का सा चित्र देखिए ।

जबरे सोनरवा के लगली नोकरिया,
उठावे लगले कोठा बंगलवा रे ।
सियावे लगले चोली बन्द अंगिया,
गढ़ावे लगले बाजू बन्द अंगिया रे ।

जबरे सोनरवा के छुटली नोकरिया,
ढहाए लगले कोठा बंगलवा रे।
बेचाए लगले चोली बन अँगिया रे,
तोराए लगले बाजू बन्द तिलरी रे।

नौकरी मिलते ही कोठी बंगला बनने लगता है, स्त्री के लिये वस्त्राभूषण तैयार होने लगते हैं, सम्पन्नता और समृद्धि का वातावरण छा जाता है। नौकरी छूटते ही हालत खराब हो जाती है। कोठा, बंगला ढहने लगता है। कपड़े गहने बिकने लगते हैं। विपन्नता, गरीबी के दिन आ जाते हैं।

इसी नौकरी पाने और उसे कायम रखने के लिए बड़ी कोशिश की जाती है, अफसरों की खुशामद की जाती है, हर प्रकार का अपमान सहा जाता है।

कोई नौजवान गांव छोड़कर परदेश नौकरी करने गया था। वहाँ किसी कारण उसका मन नहीं लगता था। उसने माता, पिता, चाचा, चाची, स्त्री सबके पास चिट्ठी लिखी कि वह नौकरी छोड़ना चाहता है।

स्त्री को छोड़कर सबने समझाया रुपया बड़ी चीज है, नौकरी मत छोड़ना। केवल स्त्री ने कहा, "रुपया कोई चीज नहीं। नौकरी छोड़कर चले आओ।" गीत इस प्रकार है—

पहिले ही चिट्ठी चाचा भेजायो, नोकरि जनि छोड़।
रुपया बड़ा ही चीज।
दूसरी ही चिट्ठी चाची भेजायो, बचवा नोकरि जनि छोड़।
रुपया बड़ा ही चीज।
तीसरी ही चिट्ठी अम्मा भेजायो, बबुआ नोकरि जनि छोड़।
रुपया बड़ा ही चीज।
चौथी ही चिट्ठी पिता भेजायो, बबुआ नोकरि जनि छोड़।
रुपया बड़ा ही चीज।
पंचवी ही चिट्ठी धनिया भेजायो, संइया नोकरि तुम छोड़।
रुपया है कुछ ना चीज।

घनियां क चिट्टी सुनि सेयां जी अइले, सबके मन को तोड़।
रुपया हैं कुछ ना चीज।

चाचा, चाची, माँ, बाप, सभी अनुभवी थे। सभी रुपयों का महत्व समझते थे। सभी जानते थे कि एक बार नौकरी छूट जाने पर फिर दूसरी बार नौकरी का मिलना कठिन होगा। उनकी आँखों में बेटे का मूल्य यही था कि वह कमासुत है, कमा कर रुपये घर भेजता है और उन रुपयों से उनका पेट पलता है। सहज स्नेह का स्थान उपयोगिता ने ले लिया था। इस लिये वे बेटे को नौकरी छोड़ने की राय कभी भी नहीं दे सकते थे।

मगर स्त्री की बात दूसरी थी। वह अपने पति के दिल की बात समझती थी। वह जानती थी कि उसका मन वहाँ न लगता होगा। वह उसे याद करता होगा, रात को उसी के सपने देखता होगा, दिन को परिश्रम करते समय भी उसे उसकी याद आती होगी और वह अपनी आँखों में आँसू भर लाता होगा। वह स्वयं जाग जागकर, तारे गिन गिन कर रातें काटती थी। वह तड़प रही थी, अपने प्रीतम से, साजन से मिलने के लिये, चार गाल बातें करने के लिए, उसे आँख भर देखने के लिए, उसकी गोल गोल बाँहों पर सिर रखकर नींद भर सोने के लिए, अपने सोहाग को धन्य और आंचल को सार्थक बनाने के लिए। उसकी आँखों में इस जीवन का मूल्य अधिक था; पति का परदेश में रहकर, कमाकर पैसा भेजने का मूल्य कम था। तभी उसने चिट्ठी लिखी, "पैसा कोई चीज़ नहीं, तुम चले आओ।"

बेटी की बिदाई

कहते हैं जब भावुक मन और भरी आँखें, अपने ही रंग में सारी प्रकृति को रंगा हुआ और अपने ही रस में सारी प्रकृति को डूबा हुआ देखने लगती हैं तब काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है, सच्चा प्रभावशाली, मार्मिक, मुखर और ओजपूर्ण! कन्या की बिदाई सारे देश के नारी और पुरुष समाज के आत्म संयम और धैर्य की परीक्षा ले लेती है। जो पिता जीवन के बड़े से बड़े संकट के समय भी धैर्य नहीं खोता और अपने ऊपर पूरा संयम रखता है वही पिता कन्या की बिदाई के समय घरा-

तियों और बरातियों के सामने बच्चों की तरह बिलख पड़ता है, उसका सारा संयम टूट जाता है, उसका धैर्य साथ छोड़ देता है। और माँ, उसकी तो छाती फटने लगती है, अपनी कोख को खाली करते समय उसको जो मार्मिक वेदना होती है उसका वर्णन असम्भव है, लेखनी की क्षमता के परे है।

एक राजस्थानी लोक गीत है जिसमें कन्या की बिदाई के समय मानव जाति के सनातन सहचरों, पहरेदारों से सहानुभूति की माँग की गयी है—

"कोयल ये कोयल वैरण, पिहु पिहु बोल,
हाँ ये वैरण, पिहु पिहु बोल !
चढ़ती बाई नै ये शब्द सुणाइयो,
डूंगर रे डूंगर राजा, नीचो सो झुक ज्याय,
हां ओ राजा, नीचो सो झुक ज्याय !
चढ़ती बाई की ओ दीखै बोरग चूनड़ी,
चढ़तै जंवाई की दीखै पचरंग पागड़ी !
सूरज ओ सूरज राजा, मोडो सो उग जाय,
हां ओ राजा, मोडो सो उग ज्याय।
चढ़ती बाई नै होसी सामोता बड़ो
बालए वाल राणी, मदरी मदरी चाल,
हाँ, ये वैरण, धीमी धीमी चाल !
चढ़ती बाई की ए चूनड़ी सरकी जाय
चढ़तै जवाई का कपड़ा रवे हमरै!

"कोयल, ए री बैरिन कोयल, तू बिदा होती हुई बाई को पिऊ पिऊ का मीठा शब्द सुना। पर्वत, ऐ मेरे पर्वत राज, तू ज़रा नीचा झुक जा जिससे मैं बिदा होकर जाती हुई अपनी प्यारी बिटिया की बहुरंगी चुनड़ी को दूर तक, नज़र भर कर, देख सकूँ और देख सकूँ प्यारे जंवाई की पंच-रंगी पगड़ी को।

"सूरज, ऐ सूर्यदेव, जरा देर से उदय हो जिससे बिदा होती हुई मेरी बिटिया के सामने धूप न हो।

"पवन, हे महारानी पवन, मंद मंद चलो। देखती नहीं हो, मेरी विदा होती बिटिया की चुनरी उड़ी जा रही है और जंवाई के कपड़े धूल से भर रहे हैं।"

इस गीत में मानवेतर सृष्टि के साथ, उसके विभिन्न अंगों के साथ, मानवीय भावनाओं का जो सामंजस्य हुआ है वह कितना स्वाभाविक और कितना मर्म वेधी है!

कालिदास ने इसी अवसर पर कण्वऋषि से भी कहलाया है,

भो: भो: संनिहित देवतास्तपोबनतरव: !
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्पीतेषु या।
ना दत्ते प्रियनन्डानऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व: कुरुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव:
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।

"बन देवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षो, जो शकुन्तला तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों के निकल आने पर उत्सव मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब अब अपनी शकुन्तला को प्रेम पूर्वक विदा दो।"

कालिदास के समय के बहुत पहिले से आज तक कन्या की विदाई की परम्परा हमारे समाज में चली आ रही है। तब से अब तक माता, पिता तथा अन्य स्वजनों की आंखें इस कठिन अवसर पर भीगती आ रही हैं। शिष्ट साहित्य, शास्त्रीय साहित्य और लोक साहित्य में समान रूप से यह भावधारा, यह प्रक्रिया चलती चली आ रही है। कब तक यह परम्परा चलती रहेगी, हम नहीं जानते; परन्तु इतना निश्चित है कि जब तक यह परम्परा चलती रहेगी, इस प्रकार का रस भींगा काव्य भी रचा जाएगा,

ऐसा काव्य जो कभी पुराना नहीं पड़ेगा, जो हमारी आंखों को निरन्तर भिगोता रहेगा।

कौन वह पाषाण हृदय व्यक्ति है जो कण्व के इन शब्दों को सुनकर आह न कर देगा ?

यस्त्र त्वया व्रण विरोपणमिङ्गुदीनां,
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे—
श्यामाकमुष्टि परिवर्धित को जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।"

"वत्से, कुशा के कांटे से छिदे हुए जिसके मुंह को अच्छा करने के लिए तू उस पर हिंगोट का तेल लगाया करती थी वही तेरे हांथ के दिये हुए मुठ्ठी भर सावें के दानों से पला हुआ तेरा पुत्र के समान प्यारा हरिण तेरा मार्ग रोके खड़ा है।"

और शकुन्तला के निम्नांकित वाक्य किस नव यौवना, नव परिणीता, पतिगृहाभिमुख तरुणी को आन्दोलित और करुणाभिभूत न कर देंगे ?

वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि,
अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पिमए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहिदाव।

"वत्स, मुझ साथ छोड़कर जानेवाली शकुन्तला के पीछे पीछे तू कहां चला आ रहा है ? तेरी मां जब तुझे जन्म देकर मर गयी थी उस समय मैंने तुझे पाल पोसकर बड़ा किया था। अब मेरे बाद, मेरे पिता जी तेरी देख भाल करेंगे। जा वापिस लौट जा।"

जिस तरह शकुन्तला इस मृगशावक को सान्त्वना देकर पति गृह की ओर चल पड़ी, उसी प्रकार हमारी लड़कियां अपने तोते मैनों को छोड़, बाग फुलवाड़ी से मुंह मोड़कर, अपने सभी स्वजनों, परिचितों, स्नेहियों से विदा लेकर, नये घर में, नये जीवन में, प्रवेश करने के लिए, चली जाती हैं। उनके कौमार्य के समाप्त होने के साथ उनके इस जीवन की सारी मर्यादायें, सारे ढंग, सारी भावधाराएं बदल जाती हैं, उनकी दुनियां नयी

हो जाती है। वे भी नयी नवेली वधू बनकर अपने पति के घर की शोभा शृंगार बन जाती हैं।

हमारी सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था में कन्याओं के जीवन में सर्वाधिक परिवर्तन उपस्थित करने वाला यह मोड़, यह अवसर एक ही बार आता है, और आकर भावी जीवन की सारी रूप रेखा बना जाता है। कौमार्य से गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने का यह अवसर माता पिता, स्नेही सम्बन्धियों के प्रेमाश्रुओं से सिंचकर पवित्र और महिमा मण्डित हो जाता है। माता पिता और वर वधू के जीवन में इससे अधिक महत्वपूर्ण घड़ी अन्य कोई नहीं आती।

सीता का सामाजिक रूप

हमारे लोक गीतों के नायक राम अथवा कृष्ण और देवियां सीता, राधा, रुक्मिणी आदि हैं। दशरथ, कौशल्या, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, लक्ष्मण, भरत, शिव, पार्वती भी यत्र तत्र आए हैं। परन्तु राम और सीता का प्राधान्य सर्वत्र रहा है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि शिष्ट साहित्य और शास्त्रीय साहित्य के स्रष्टाओं की ही तरह लोक साहित्य के स्रष्टाओं ने भी राम सीता को आदर्श रूप में देखा, राम सीता की जीवन-कथा से प्रेरणा ली और उनके कार्य कलापों से स्वयं अपने जीवन के आचार, विचार, व्यवहार को प्रभावित होता देखा।

परन्तु शास्त्रीय साहित्य और शिष्ट साहित्य में राम सीता को या तो पूर्ण परब्रह्म परमात्मा आदि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया या कम से कम उनमें सहज मानवों से भिन्न लोकोत्तर गुण देखे गऐ। परन्तु लोक गीतों में इस दम्पति को सहज मानव के रूप में, साधारण परिवारों के सदस्य के रूप में ही स्वीकार किया गया। यही कारण है कि लोक गीतों के राम अपने सगे स्वजन जैसे लगते हैं और सीता अपनी बेटी, बहिन या बहू मालूम पड़ती है।

लोक गीतों के राम और सीता का व्यवहार सहज मानवों जैसा होता है, वे साधारण मनुष्यों की भाँति क्रुद्ध होते हैं, हंसते हैं, बोलते हैं, झगड़ा

करते हैं, रोते हैं, गाते हैं। इससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम अथवा भगवती सीता की मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का धक्का नहीं लगता; बल्कि इस साधारण रूप में आ जाने से वे जन साधारण के जीवन के जीवन, प्राणों के प्राण, सांसों की सांस बन जाते हैं। जहां शिष्ट और शास्त्रीय साहित्य के रचयिता राम और सीता के मानवीय पक्ष को दबाकर रखना चाहते हैं, वहीं लोक गीतकार उनके मानवीय पक्ष को अधिक उजागर और स्पष्ट रूप में रखना चाहते हैं।

श्री वाल्मीकि की रामायण और भवभूति के 'उत्तर राम चरित नाटक' में राम और सीता अधिक मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं उनके पास तक हमारी पहुँच हो सकती है। परन्तु तुलसीदास का बार बार यही आग्रह रहा है कि राम भगवान हैं, सीता भगवती हैं। जब जब राम और सीता श्री रामचरित मानस में मनुष्यों जैसा व्यवहार करना चाहते हैं, तुलसीदास जी तुरन्त पाठक और श्रोता को यह याद दिला देते हैं कि राम भगवान हैं और सीता भगवती हैं।

विशेषतया राम के सम्बन्ध में तो तुलसीदास इतने सतर्क और चौकन्ने रहते हैं कि कभी-कभी कला, मनोविज्ञान और काव्य की दृष्टि से श्री राम चरित मानस के विभिन्न स्थलों पर कमज़ोरी सी दिखाई देने लगती है, और वहाँ रस परिपाक भी पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। अपने नायक के प्रति सजग रहना प्रत्येक कलाकार का सबसे बड़ा कर्तव्य है। परन्तु अतिरेक से, आवश्यकता से अधिक सतर्क और होशियार रहने से, कभी-कभी खेल बिगड़ जाता है।

यह सही है कि तुलसीदास मूलतः भक्त कवि थे और लोक रंजन, लोक कल्याण तथा लोक संग्रह की दृष्टि से ही उन्होंने श्री राम चरित मानस की रचना की थी। भक्त होने के कारण वह क्षण भर के लिए भी राम को परब्रह्म, परमेश्वर, पूर्णपुरुष, अव्यक्त, अनादि, अगोचर आदि के अतिरिक्त सहज, सरल मनुष्य के रूप में नहीं चित्रित कर सकते थे। धर्म की रक्षा के लिए राम ने मनुष्य के रूप में अवतार लिया था। बालकाण्ड से उत्तर

काण्ड तक राम ने 'लीला' की। बच्चे के रूप में हों, किशोर के रूप में हों, तरुण और गृहस्थ के रूप में हों, बनवासी हों, विजयी सम्राट हों, अथवा चक्रवर्ती राजा हों, दशरथ-कौशल्या के बेटे हों, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के सगे भाई हों, हनुमान और विभीषण के प्रभु हों, सुग्रीव के मित्र हों, सीता के पति हों, चाहे जो हों, जिस रूप में हों, जिस प्रकार का भी कार्य और व्यवहार कर रहे हों, राम ईश्वर हैं—मनुष्य कभी नहीं। तुलसीदास जी का यह आग्रह श्री रामचरित मानस की पंक्ति-पंक्ति में विराजमान है।

फलतः तुलसीदास के राम पर जनता श्रद्धा रखती है, उनको प्रभु समझती है, उनसे भयाक्रान्त और आतंकित रहती है, शरणागत होने और पग-पग पर इस लोक और उस लोक के लिए भीख मांगने, दया कृपा की याचना करने के लिए विवश रहती है। परन्तु वह राम को गोद में लेकर खेलाने, उनका गाल चूमने, बाल सहलाने, आँसू पोछने की हिम्मत नहीं कर सकती। वह राम को सच्चे अर्थ में स्वजन, प्रिय, सहयोगी, सुख-दुख का साथी नहीं समझ पाती। सीता के साथ अन्याय करने पर वह उनसे क्रुद्ध होने की दृढ़ता और हिम्मत नहीं दिखा सकती। तुलसीदास जी ने राम और जनता के सच्चे मनोभावों के बीच यह गहरी खाई खोद दी है जो भक्त और धार्मिक नेता के लिए सर्वथा उचित काम था, परन्तु लोक मानस के गायक के लिए पूर्णतया उचित न था। यदि यह बात न होती तो हम श्री रामचरित मानस को लोक मानस का सच्चा और एक मात्र प्रतिविम्ब मानते, उसे केवल शिष्ट साहित्य मानकर, शास्त्रीय साहित्य की कोटि में रखकर जन साधारण से दूर न कर देते।

अनेक लोग इस बात को इस ढंग से भी रखते हैं। वे कहते हैं कि लोक साहित्य में सहज हृदय के सहज भाव सहज रूप में अभिव्यक्त होते हैं। शिष्ट साहित्य में बुद्धि का स्थान हृदय से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। बौद्धिकता का आग्रह कृत्रिमता की जननी होती है। इसीलिए शिष्ट साहित्य में स्वाभाविकता कम और बौद्धिकता अधिक होती है। लोक साहित्य की रचना में बुद्धि का प्रयोग करने, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन आदि

का अध्ययन करने, रस, अलंकार, पिंगल आदि के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं होती। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में, "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है, छंद नहीं, केवल लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।"

श्री त्रिपाठी जी आगे कहते हैं, "पूर्व काल में किसी व्याध के तीर से क्रौंच पक्षी को निहत देखकर मर्माहत महर्षि बाल्मीकि के हृदय में स्वभावतः करुणा उत्पन्न हुई थी। उसी करुणा से कविता का जन्म हुआ था। जो हृदय बाल्मीकि के पास था, वह गांवों में सदा रहता है, अब भी है। उसी में से प्रकृति का गान निकला करता है।

"कविता प्रकृति का गान है। वह मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है। इसी से कृत्रिम सभ्यता के प्रकाश में उसका विकास नहीं होता।

"ग्राम गीतों का स्थान ग्राम है। जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं, हृदय है। जिनके विनय के परदे में छल नहीं, पाश्चात्ताप है। जिनकी मैत्री के फूल में स्वार्थ का कीट नहीं, प्रेम का परिमल है, जिनके मानस जगत में आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करुणा है, संतोष है, त्याग है, क्षमा है, विश्वास है, उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के, स्त्री पुरुषों के बीच में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती हैं। प्रकृति के वे ही गान 'ग्राम गीत' हैं।"

लोक गीतों के सम्बन्ध में उपर्युक्त सब बातें सही हैं, साथ ही यह भी कि उनमें हार होते हुए भी विजय के लिए अदम्य उत्साह है, चारों ओर निराशा का भयानक वातावरण होते हुए भी आशा का टिमटिमाता दीप अपनी मधिम मधिम किरणें बिखेरता रहता है। वहाँ क्रोध, आक्रोश, प्रतिहिंसा, संघर्ष की प्रवृत्ति, जुझारूपन, कठिनाइयों का सामना करने का जीवट और सफलता प्राप्त करने के लिए लगन भी है। सच यह है कि इन लोक गीतों में परलोक और मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास तो है, परन्तु इससे कहीं अधिक स्पष्ट और पुष्ट लक्षण मिलते हैं, इस जीवन को सांसारिक,

गृहस्थ जीवन को अधिक सुखी, अधिक स्वस्थ, अधिक पवित्र अधिक सहज और अधिक मंगलमय बनाने के। ये लोक गीत इस बात के साक्षी ही नहीं हैं। वे तो सच्चे अर्थ में जीवन की सारी मांगलिक वस्तुओं, विचारों, दृष्टियों और आदर्शों के पहरेदार भी हैं।

यहाँ हम सीता के द्वितीय बार बन गमन के प्रकरण को लेंगे।

बाल्मीकि की रामायण में इस घटना का वर्णन इस प्रकार आता है। राम का राज्याभिषेक हो चुका है। नगर में, प्रजानन में संतोष और सुख व्याप्त है। भरत जी सम्राट रामचन्द्र से कहते हैं "वीर, देव स्वरूप, आपके शासन करने के समय जो मनुष्य नहीं हैं वे भी बोलते देखे जाते हैं। अभी आपके राज्याभिषेक के हुए एक महीना से अधिक समय नहीं हुआ पर सभी मृत्यु-लोक वासी निरोग हो गये हैं। वृद्धों की भी मृत्यु नहीं होती, स्त्रियाँ बिना कष्ट के प्रसव करती हैं। पुरुष हृष्ट पुष्ट हैं। राजन, पुरवासी भी बहुत प्रसन्न हैं। मेघ समय पर अमृतमय जल की वर्षा करते हैं। वायु भी शीतल सुखकारी और हितकारी रहती है। राजन, नगर वासी तथा राज्य वासी कहते हैं कि हम लोगों का ऐसा ही राजा सदा हो।"

भरत की यह बात सुनकर राम प्रसन्न हुए। फिर अशोक वाटिका में जाकर निवास करने लगे। वहाँ नृत्य और संगीत विद्या के दक्ष अपने कला कौशल का परिचय देते। किन्नरियों के साथ अप्सराएं, नाग कन्याएं तथा दक्षिण देश की सुन्दरी स्त्रियाँ रामचन्द्र के सामने नाचतीं। इसी वातावरण में एक बार प्रसन्न मुद्रा में (सीता को कल्याण मय गर्भ के चिह्नों से युक्त देखकर) राम बोले, "देवि, तुम्हारा पुत्र पाने का समय आ रहा है। सुन्दरि, तुम क्या चाहती हो, तुम्हारा कौन मनोरथ पूरा करूँ ?"

सीता जी ने हंस कर कहा, "गंगा तीर पर रहने वाले उग्र तपस्वी ऋषियों के पवित्र तपोवन को मैं देखना चाहती हूँ। फल फूल भोगी ऋषियों के पास मैं बास करना चाहती हूँ। यह मेरी बड़ी इच्छा है कि फल फूल भोगी ऋषियों के तपोवन में कम से कम एक रात मैं निवास करूँ।"

पुण्यात्मा राम ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की और कहा, "निश्चिन्त रहो, कल तुम अवश्य जाओगी।"

इसके बाद राजाराम चन्द्र महल के बिचले खण्ड में मित्रों के साथ गए। वहाँ विजय, मधुमत्त, काश्यप, मंगल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दत्नक्य और सुमागध आदि विदूषकों ने हास्य विनोद से राजा राम का मन रिझाया, उन्हें प्रसन्न किया। किसी कथा प्रसंग में राम ने कहा, "भद्र, आज कल नगर में तथा राज्य में कौन सी बात हो रही है? मेरे विषय में, सीता के विषय में तथा भरत और लक्ष्मण के विषय में नगर और राज्य वासी क्या कहते हैं? हम लोगों के सम्बन्ध में उनका क्या मत है? शत्रुघ्न तथा माता कैकेयी के विषय में उनकी क्या राय है? यह सब इसलिए पूछ रहा हूँ कि बनवासी तथा राज्यवासी राजाओं की प्रायः निन्दा होती रहती है।"

भद्र हाथ जोड़कर बोला, "राजन, पुरवासियों की बातें शुभ हैं। आपकी कोई निन्दा नहीं करता।"

इस पर रामचन्द्र ने फिर पूछा, "जो भी बातें हों, ठीक-ठीक सब कहो। अच्छी या बुरी जो बात नगर वासी कहते हों, वह कहो। मैं अच्छी बातों को स्वीकार करूँगा और बुरी बातें छोड़ दूँगा। जिन्हें नगर वासी और राज्य वासी अच्छी समझेंगे उन्हें मैं करूँगा और जिन्हें वे बुरी समझेंगे उन्हें छोड़ दूँगा। तुम विश्वास पूर्वक, निर्भय और निश्चिन्त होकर सब कहो। पुरवासी और राज्यवासी जो बुरी बात कहते हैं वह कहो, वे हमारी जो निन्दा करते हों, वह कहो।"

तब भद्र बोला, "राजन, नगर वासी, चौपाल में, बाजार में, गलियों में, वन में, उपवन में जो अच्छी बातें कहते हैं वह सुनिए। वहाँ चर्चा है कि रामचन्द्र ने समुद्र में सेतु बांधकर अद्भुत काम किया। अजेय रावण को सेना और वाहन के साथ मारा। वानरों, भालुओं और राक्षसों को अपने वश में कर लिया। युद्ध में रावण को मारकर रामचन्द्र सीता को ले आए और क्रोध न करके उन्होंने उन्हें घर में रख लिया। रामचन्द्र के हृदय

में सीता के संभोग का सुख इतना बद्धमूल हो गया है कि जिसे गोद में उठाकर रावण ले गया था, जो लंका में गयीं और अशोक वाटिका में राक्षसों के अधीन होकर रहीं उनको रामचन्द्र ने निन्दित नहीं समझा। उनका त्याग नहीं किया। (चलो अच्छा हुआ !) यदि हम साधारण लोगों की स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी बातें होंगी तो समाज उन्हें सह लेगा। वे बुरा न समझी जायंगी, क्योंकि जैसा राजा करता है, प्रजा भी वैसा ही करती है।"

इसके बाद रामचन्द्र ने मित्रों से पूछा, "क्या यह संवाद सत्य है ?" उन सभी लोगों ने कहा कि, "यह बात सत्य है। ऐसी ही बातें नगर में कही जा रही हैं।"

इतना सुनने पर राम ने सभा विसर्जित की, तीनों भाईयों को बुलाया और उनसे कहा, "सीता के सम्बन्ध में पुरवासियों में जो बातें फैली हुई हैं उन्हें तुम लोग हमसे सुनो। पुरवासियों और राज्य वासियों में मेरा बड़ा अपवाद फैला हुआ है। मेरी बड़ी निन्दा हो रही है जिससे मेरा कलेजा फटा जा रहा है। मैं महात्मा इच्छ्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। सीता भी महात्मा जनक के कुल में उत्पन्न हुई हैं। तुम जानते हो कि सीता को निर्जन दण्डक बन से रावण हर ले गया। तब मैंने रावण का बध किया। वहां लंका में मैंने सोचा कि सीता इतने दिनों तक लंका में रही हैं, तो इन्हें अयोध्या कैसे ले जाऊँ ? उस समय सीता ने अपनी शुद्धि का विश्वास दिलाने के लिये अग्नि प्रवेश किया। लक्ष्मण, तुम उस समय उपस्थित थे। तुम्हारे और देवताओं के सामने अग्नि ने सीता को पवित्र कहा। आकाश-चारी वायु ने सीता को निष्कलंक कहा। इस प्रकार शुद्ध आचरण वाली सीता को इन्द्र, देवता और गन्धर्वों के सामने लंका द्वीप में मुझे अग्नि ने सौंपा। मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीता को शुद्ध समझती है। तभी मैं सीता को लेकर अयोध्या आया ; पर यह निन्दा बहुत बड़ी है। इससे मुझे दुख भी है। पुरवासियों और राज्यवासियों में फैली यह निन्दा बड़ी भयानक

है। जिसकी निन्दा संसार में फैलती है, जिसका अपवाद फैलता है वह तब तक निन्दित लोकों में रहता है जब तक उसकी निन्दा होती रहती है।"

राम ने आगे कहा, "हे भाइयो, कीर्ति की कामना सभी लोग करते हैं। अपकीर्ति कोई नहीं चाहता। इसलिए (अपकीर्ति से बचने के लिए) मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम लोगों को छोड़ सकता हूं, सीता को छोड़ना कौन बड़ी बात है?"

फिर राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम सुमन्त के रथ पर सवार होकर तथा उस पर सीता को बैठाकर उन्हें अपने राज्य के बाहर ले जाकर छोड़ आओ। गंगा के उस पार तमसा तीर पर महात्मा बाल्मीकि का आश्रम है। वहीं निर्जन स्थान में उन्हें छोड़ आओ। सीता ने पहिले भी मुझसे कहा है कि वह गंगा तीर के आश्रमों को देखना चाहती हैं। सीता का यह मनोरथ पूरा करो।"

लक्ष्मण ने सुमंत्र को सहेज कर सीता जी से कहा, "आपने आश्रम में जाने के लिये राजा से प्रार्थना की थी। उन्होंने भी बचन दिया था। उन्होंने आपको आश्रम में ले जाने के लिये मुझे आज्ञा दी है। राजा की आज्ञा के अनुसार मैं आपको गंगातीर वासी मुनियों के आश्रम में पहुँचा दूँगा।

सीता जी लक्ष्मण की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। वह अपने साथ ऋषि पत्नियों को देने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभरण लेकर रथ पर सवार हो गयीं और जाते समय लक्ष्मण से बोलीं, "अनेक अपशकुन इस समय हो रहे हैं। मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है। कलेजा हिल रहा है। मेरा जी खराब हो रहा है। मन घबड़ा रहा है। बड़ी अधीरता मालूम पड़ रही है। समूची पृथ्वी मुझे सूनी लग रही है। तुम्हारे भाई का कल्याण हो। वीर, मेरी सभी सासों का कल्याण हो। नगर तथा राज्य के प्राणियों का कल्याण हो।"

निरपराध सीता को राम और लक्ष्मण दोनों ने धोखा दिया। उनकी सरल सी मांग थी, वाल्मीकि के आश्रम को देखने की। उसी का सहारा

लेकर, उसी की आड़ में मर्यादा पुरुषोत्तम राम और उनके प्राणों से प्यारे भाई लक्ष्मण ने सीताको राज्य से निष्कासित कर दिया।

अयोध्या से इस प्रकार विदा होते समय सीता के मुख से निकले निम्नांकित वाक्य सदा सर्वदा प्रत्येक मानव प्राणी को, प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को करुणा विगलित, शोक संतत और क्रुद्ध भी करते रहेंगे।

अशुभानि बहुन्येव पश्यामि रघुनन्दन।
नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते।
हृदय चैव सौमित्रे, अस्वस्थमिव लक्षए।
औत्सुक्यं परमं चापि भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल।
श्वश्रूणां चैव मे वीर, सर्वासामविशेषतः।
पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि।

इस तरह जिस जनपद और पुरवासियों के द्वारा मिथ्या प्रचार और कलंकित किये जाने के कारण और जिस राजा राम की सर्वथा अनुचित आज्ञा के कारण निष्पाप, निष्कलंक, निरपराध, निर्दोष सीता को, गर्भवती स्थिति में भी, धोखा देकर अयोध्या से निकाला गया और भेजा गया, उसी जनपद तथा पुर के वासियों और उनके राजाराम का कुशल मनाती हुई वही सीता जी प्रसन्नता और पूर्ण विश्वास तथा आस्था के साथ बन चली गई।

बन में पहुँचकर लक्ष्मण ने सीता से कहा, "आपके सम्बन्ध में जो भयंकर जनापवाद नगर और राज्य में फैला है उसे राजा रामचन्द्र ने भरी सभा में सुना। राजा अपने हृदय में, जो क्रोध और दुःख से भरा हुआ है, कलंक की जो बात छिपाए हुए हैं, उसे मैं आपके सामने नहीं कह सकता। आप निर्दोष हैं। मेरे सामने आपकी अग्नि परीक्षा हो चुकी है और आपकी निर्दोषिता प्रमाणित हो चुकी है। फिर भी राजा ने आपका त्याग किया है। वह जनापवाद से डरते हैं। आप अन्यथा न समझें। आप मुझे अपराधी न समझें। मैं आपको आश्रम के समीप लेजाकर छोड़ दूँगा। ऐसा मैं राजा की आज्ञा और आपकी अनुमति से करूँगा।"

लक्ष्मण की कठोर बातों को सुनकर सीता बेहोश हो गयीं। होश-आने पर वह बोलीं, "मैंने पूर्व जन्म में कौन सा पाप किया है, किसको स्त्री वियोग कराया है कि सदाचारिणी होने पर भी मेरे पति ने मुझे त्याग दिया? पहिले मैंने रामचन्द्र जी के साथ रहकर आश्रम में निवास किया था। वहाँ के दुखों का अनुभव करने के बाद भी मैंने पुनः आश्रम में रहने के लिए निवेदन किया था (क्योंकि मैं समझती थी कि राम, मेरे पति, साथ रहेंगे!) अब मैं निर्जन वन में बिना राम के कैसे रहूँगी? जब यहाँ के ऋषि मुनि पूछेंगे कि रामचन्द्र ने तुम्हें क्यों त्यागा, तुमने कौन सा बुरा काम किया, तो मैं क्या कहूँगी? मैं तो इस समय गंगा जी में डूब कर प्राण भी नहीं गंवा सकती क्योंकि ऐसा करने पर मेरे पति का राजवंश नष्ट हो जाएगा।"

फिर सीता जी ने कहा, "लक्ष्मण, वापिस जाकर तुम सबसे मेरा प्रणाम कहना, सबको मेरा कुशल क्षेम बता देना। राजाराम से कहना राघव, आप जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है। अपयश से डरकर ही आपने मेरा त्याग किया है। आपकी जो निन्दा, जो अपवाद हो रहा है, उसको मैं दूर करूँगी क्योंकि आप मेरे आश्रय हैं। आप पुरवासियों के साथ अपने भाइयों जैसा ही व्यवहार करें। यही श्रेष्ठ धर्म है। इससे उत्तम कीर्ति प्राप्त होती है। मैं अपने शरीर के बारे में कुछ नहीं सोचती। मेरे बारे में पुरवासियों का जैसा अपवाद है, वह बना रहे। उसकी मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि पति ही स्त्रियों का देवता है, गुरु है, बन्धु है। प्राणों का त्याग कर भी पति की इच्छा पूरी करनी चाहिए। अतएव शरीर के अपवाद का मुझे कष्ट नहीं है। त्याग का भी कष्ट नहीं है क्योंकि इससे आप के यश की रक्षा होती है।"

सीता जी ने अन्त में लक्ष्मण से कहा, "तुम मुझे देखकर जाओ। मेरा ऋतु समय टल गया है। मैं गर्भवती हूँ।"

लक्ष्मण जी सीता की प्रदक्षिणा कर नत शिर हो यह कहते हुए नाव पर आ गए, "मैंने आज तक केवल आपका पांव देखा है। यहाँ राम की अनुपस्थिति में मैं आपका मुख कैसे देखूँ?"

कुछ समय बाद जब शत्रुघ्न किसी कारणवश ऋषि आश्रम में उपस्थित थे, उसी रात को सीता के पेट से दो शिशु जन्मे। वाल्मीकि ने उनका नाम लव कुश रक्खा। शत्रुघ्न ने सीता जी का दर्शन भी किया, फिर वह चले गये।

फिर राम को राजसूय यज्ञ करने की सूझी। परन्तु भरत के समझाने पर उन्होंने अपना निश्चय बदल दिया और अश्वमेध यज्ञ करने की ठानी। सुग्रीव, विभीषण, सारे वानर भालु, मित्र राजा, ऋषि मुनि तथा ब्राह्मण बुलाए गये। यज्ञ के उपरान्त लक्ष्मण की देख रेख में काला घोड़ा छोड़ा गया।

वहाँ राम के पास ऋषि वाल्मीकि भी पहुँचे थे। उन्होंने अपने दो शिष्यों को रामायण का गायन करने की आज्ञा दी। जब दो बालक शिष्य वहाँ गये तो राम ने उन बालकों को बुलाया और सबके सामने गाने को कहा। बालक गाने लगे। श्रोता मंत्र मुग्ध हो सुनने लगे। मुनि तथा पराक्रमी राजा उन दोनों बालकों को ऐसे देख रहे थे मानों वे उन्हें आंखों ही आंखों पी जाना चाहते हों। आपस में चर्चा होने लगी कि इन बालकों की शक्ल राम से बिल्कुल मिलती है। यदि ये अपने सिर से जटा उतार दें तो इनमें और राम में भेद करना मुश्किल हो जाय। यह चर्चा नगर वासियों में फैल गयी।

जब राम ने भरत द्वारा गाने के बदले में उन बालकों को सोना देना चाहा तो उन्होंने इनकार कर दिया। इससे राम बहुत विस्मित हुए। पूछने पर बालकों ने बताया कि उन्हें यह चरित वाल्मीकि ने बताया है। उनसे पूरी कथा सुनी जा सकती है। राम ने वाल्मीकि से यह पूरी कथा सुनी। तब उन्हें पता चला कि ये दोनों बालक उन्हीं के बेटे थे।

राम ने फौरन वाल्मीकि के पास कहलवाया कि यदि सीता शुद्ध आचरण की और पवित्र हों तो वह यहाँ इस सभा में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें। वाल्मीकि ने सीता की ओर से हामी भर दी। दूसरे दिन सारे ऋषि, मुनि और प्रजाजन एकत्र हुए। वाल्मीकि सीता को लेकर उस स्थल

पर आये। सभी लोग साधु साधु कह उठे। समस्त एकत्र भीड़ में कोलाहल मच गया।

उस जन समूह के सामने महर्षि बाल्मीकि ने उच्च स्वर में कहा, "दशरथ पुत्र, यह सीता धर्मचारिणी और सुव्रता है। इसे लोकावाद के कारण मेरे आश्रम के पास कोई छोड़ गया था। रामचन्द्र, लोकापवाद से भयभीत तुमको, सीता अपने पातिव्रत का विश्वास दिलावेगी। तुम उसे आज्ञा दो। ये दोनों जानकी के पुत्र हैं, यमज हैं, ये दोनों वीर तुम्हारे ही पुत्र हैं। मैं तुमसे यह सत्य सत्य कह रहा हूँ। मैं प्रचेता का दसवां पुत्र हूँ। मुझे अपने झूठ बोलने का स्मरण नहीं है। मैं कहता हूँ ये दोनों बच्चे तुम्हारे पुत्र हैं। मैंने हजारों वर्ष तपस्या की है। उसका फल मुझे न मिले, यदि सीता पापिनी हो। मन, वचन और कर्म से मैंने कभी पाप नहीं किया। उनका फल मुझे तभी मिले यदि सीता निष्पाप हो। पंचेन्द्रियों तथा मन से मैंने सीता की शुद्धि जान ली है। तभी बन के निर्झर पर इसे पाकर मैंने शरण दी। यह शुद्धाचारिणी है, निष्पाप है और पति को देवता समझती है। तुम लोकापवाद से भयभीत हो। सीता तुमको विश्वास दिलावेगी। हे राज-पुत्र, जानकी शुद्ध है। यह बात दिव्य दृष्टि से मैंने जान ली है। लोकापवाद के डर से ही तुमने इसका परित्याग किया है, यद्यपि तुम भी इसे शुद्ध जानते हो।"

इसके बाद काषाय वस्त्र पहने, सिर झुकाए सीता आयीं और हांथ जोड़कर बोलीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तए।
तथामे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथामे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथामे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।

"यदि मैं रामचन्द्र को छोड़कर दूसरे पुरुष की चिन्ता मन से भी न

करती होऊँ तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें। यदि मैं मन, वचन और कर्म से रामचन्द्र की पूजा करती होऊँ तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें। मैं राम के अतिरिक्त दूसरे पुरुष को नहीं जानती, यदि मेरा यह बचन सत्य हो तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें।"

सीता जिस समय इस प्रकार बोल रही थीं, सामने की धरती फट गयी। उसमें से एक सिंहासन निकला। पृथ्वी ने सीता जी का अभिनन्दन दोनों हांथों को बढ़ाकर किया और उन्हें सिंहासन पर बिठाया। सिंहासन पर बैठकर सीताजी धरती में समा गयीं।

धरती ने अपनी बेटी को अपनी गोद में वापिस ले लिया।

श्री बाल्मीकीय रामायण के उत्तर कारड में सीता जी के दूसरे बार बन गमन का विवरण आपने देखा। यों तो हमारे देश में अनेक रामायणें हैं। परन्तु इन सब में श्री बाल्मीकीय रामायण ही ऐसी रचना है जिसका लोकगीतों से निकटतम और सबसे सीधा सम्बन्ध है। ऐसा क्यों है? श्री बाल्मीकीय रामायण के बाद सबसे लोक प्रिय राम सीता के चरित्र से सम्बन्धित रचना श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरित मानस है। परन्तु तुलसीदास जी ने अपने राम और सीता को साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित नहीं किया, फलतः वे हमारे लोक मानस के पूज्य होते हुए भी उसके अविभाज्य अंग नहीं हो पाए।

श्री बाल्मीकि के राम और सीता, अवतार होते हुए भी लोकोत्तर प्रतिभा तथा गुणों से सम्पन्न होते हुए भी, व्यवहार में सहज, सरल मानव प्राणी हैं। इसलिए उनके ईश्वरत्व को प्रमाणित करने की चिन्ता तुलसीदास की तरह बाल्मीकि को नहीं हुई। राम और सीता आदर्श नायक और देवी हैं। आदि कवि ने उन्हें इस रूप में चित्रित करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। परन्तु उन्होंने अपने राम और सीता को साधारण मानव की कोटि से दूर या अलग रखने की बेकार कोशिश नहीं की।

सीता, रामचन्द्र, लक्ष्मण और लवकुश को चित्रित करते समय कवि ने स्वाभाविकता का ध्यान सर्वत्र रखा है। तुलसीदास ऐसा नहीं कर सके।

इसलिए बाल्मीकि के राम और सीता लोक मानस के अति निकट आ गए। यदि भाषा का व्यवधान न होता तो बाल्मीकि रामायण के सभी महत्वपूर्ण पात्र और कथानक लोक गीतों में आ गये होते। परन्तु यही क्या कम है कि श्री रामचरित मानस की महान लोक प्रियता के बावजूद बाल्मीकि के राम और सीता लोक गीतों के माध्यम से जीवित रहे, वे सर्वथा लुप्त नहीं हो गए? इससे यह पता चलता है कि बाल्मीकि रामायण की रचना और लोक प्रियता के बाद उस कथा से अनुप्राणित लोकगीतों की परम्परा अविच्छिन्न रही, वह समय और भाषाओं के स्तरों को पार करती आज तक चली आयी है। इस प्रकार, इस कथा से सम्बन्धित जो लोकगीत प्राप्त हैं, उसकी परम्परागत प्राचीनता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

'उत्तर रामचरित नाटक' की रचना करते समय भवभूति ने श्रीबाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड से ही प्रेरणा प्राप्त की। इस महान नाटककार ने बाल्मीकि से प्रेरणा तो प्राप्त की, परन्तु उसे जन साधारण तथा दर्शकों के मनोविज्ञान का सदैव ध्यान रहा। उनके हृदय में नारी जाति के लिए कितनी अधिक श्रद्धा थी, वह उनके लिए कितनी सहानुभूति और करुणा रखते थे! वह उनके प्रति किए अन्याय को किस तरह असह्य समझते थे और उसके प्रतिकार और किसी हद तक प्रतिशोध के लिए भी कितने आकुल रहते थे, 'उत्तर रामचरित' इसका उदाहरण है। करुण रस का इतना महान नाटक शायद संसार की किसी भी भाषा में नहीं मिलेगा।

यहां हम उत्तर राम चरित्र के अन्तिम अंश को लेंगे। स्थान बाल्मीकि का आश्रम है। गंगा तट पर पवित्र रंग भूमि तैयार है। महर्षि बाल्मीकि ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, पुरवासियों, प्रजाजनों, देवताओं, राक्षसों, नागों, चराचर के जीवों को नाटक देखने के लिए निमंत्रित किया है। राम और लक्ष्मण भी वहां हैं। लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु के साथ ही लवकुश बैठे हैं। नाटक आरम्भ होता है।

गंगा और पृथ्वी बच्चों को गोद में लिए मूर्छित सीता को सम्हाले रंग मंच पर आती हैं। इसी समय गंगा कहती हैं—

अत्रभवती विश्वम्भरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन ।
यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः । सखि भूतधात्रि वत्से वैदेहि समाश्वसिहि ।

"भगवती बसुन्धरा भी दुखी हो रही हैं । इसीलिए कि संतान स्नेह ने उन्हें जीत लिया । अथवा यह मोह ग्रन्थि सर्वसाधारण है । यह संसार सूत्र सभी जीवों के हृदय में रहने वाला है । सखि पृथ्वी, बेटी सीता, धीरज धरो ।"

इसके उत्तर में सीता की माता पृथ्वी कहती हैं—

देवि, सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि ?
सोढ़श्चिरं राक्षस मध्यवास
स्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः ।

"देवि मैंने सीता को जन्म दिया है । मैं धीरज कैसे धारण करूँ ? एक तो बहुत दिनों तक उसका असह्य निवास राक्षसों के बीच रहा । फिर दूसरी बार वह निर्वासित की गयी । यह असह्य है ।"

गंगा ने पृथ्वी को समझाया कि प्रारब्ध के आगे किसी की नहीं चलती । इस पर पृथ्वी ने एक संतत दुखी माँ की तरह चिढ़कर कहा—

भगवती भागीरथि, युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य ?
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाऽल्ये बालेन पीड़ितः ।
नाहं न जनको नाग्निर्नतु वृत्तिर्न सन्ततिः ।।

"भगवती भागीरथी, आपके वंश में उत्पन्न रामचन्द्र के लिए क्या यह उचित था ? रामचन्द्र ने बचपन में किए गए पाणिग्रहण को प्रमाण नहीं माना । उन्होंने न मुझपर, न विदेहराज पर, न अग्नि पर, न पातिव्रत धर्म पर और न संतान पर ही कुछ ध्यान दिया ।"

गंगाजी ने पृथ्वी को बहुत कुछ समझाया, लोकापवाद की बात कही, इच्छ्वाकु वंश के कुल की दोहाई दी । बातें चलती रहीं ।तब तक सीता जी ने कहा—

णेदुं मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा ।
"—माँ, मुझे अपने अङ्गों में छिपा ले !"

पृथ्वी तथा गंगा दोनों सीता को समझाती हैं। अन्त में सीता की पवित्रता की दोहाई देती हुई दोनों एक स्वर में सीता से ही कह उठती हैं—

जगन्मंगलमात्मानं कथं त्वमवमन्यते।
आवयोरपि यत्संगात् पवित्रत्वं प्रकृष्यते।

"विश्व कल्याण की मूल तू, अपने आप को हीन क्यों समझ रही है? तेरे ही संसर्ग से हम दोनों की पवित्रता का उत्कर्ष है।"

इस पर लक्ष्मण कह उठते हैं, "आर्य, सुनिए" और राम भरे हुए कण्ठ से इतना ही कह पाते हैं—लोक: शृणोतु—"संसार सुने।"

नाटक आगे चलता है। सीता जी पृथ्वी से पुनः प्रार्थना करती हैं कि, "मां, मुझे अपने अंगों में छिपा ले। मृत्यु लोक में मैं इस प्रकार का अपमान सहन करने में असमर्थ हूँ।"

णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा, ण सहिस्सं ईरिसं जीअलोअस्स परिभवं अणुभविदुम्!

सीता की इस चुनौती भरी मांग को पृथ्वी माता अस्वीकार न कर सकीं और उन्हें कहना पड़ा कि जब बच्चे दूध पीना छोड़ देंगे तो वह अपनी बेटी सीता को अपनी गोद में वापिस बुला लेंगी।

और सीता धरती की गोद में समा भी जाती हैं!

इसके बाद राम व्याकुल होकर चीख पड़ते हैं, "क्या सीता विलीन हो गयीं? हाय, पातिव्रत धर्म की देवि रसातल को चली गयी!"

और, वह उसी समय मूर्छित होकर गिर जाते हैं।

उधर गंगाजल खौलने लगता है। सभी लोग आश्चर्य चकित होकर देखने लगते हैं कि अब क्या होता है। उसी समय नभ वाणी होती है, "हे विश्व वन्द्ये अरुन्धती, हम दोनों, गंगा और पृथ्वी को संतुष्ट करो, तुम्हारी इस पुण्य व्रता बहू को हम तुम्हे सौंपती हैं!"

अरुन्धती सीता के साथ आती हैं। अरुन्धती सीता को आदेश देती हैं कि वह अपने स्पर्श से राम को जाग्रत करें। सीता संकोच के साथ राम का बदन छूती हैं और कहती हैं—

समस्ससदु समस्ससदु अज्जउत्तो।

सीता ने इस तरह राम को जाग्रत और आश्वस्त किया। अन्त में माता अरुन्धती ने समस्त पुरवासियों को ललकारते हुए घोषणा की :

भो भोः पौरजानपदाः, इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या च समर्पिता पूर्वं भगवता वैश्वानरेण निर्णीत पुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता सावित्र कुल बधूदेव यजनसम्भवा जानकी परिग्रह्यताम्। कथमिहि भवन्तो मन्यन्ते!

"पुरवासियो, भगवती गंगा और पृथ्वी से प्रशंसित और उन्हीं के द्वारा मुझको समर्पित की गयी तथा इससे पहिले अग्नि द्वारा पवित्र मानी गयी, ब्रह्मा सहित सभी देवताओं से बन्दनीया सूर्य बंश की पतोहू, यज्ञ भूमि से उत्पन्न इस सीता को राज रानी के रूप में स्वीकार करो। कहिए, आप लोगों की क्या राय है?"

इसके बाद विरोध करने की हिम्मत किसकी हो सकती थी? राम ने घुटने टेक दिये। सीता ने बस इतना पूछा और वह भी स्वगत, अपने मन से, "क्या आर्य पुत्र मेरे दुख को दूर करना जानते हैं?"

सीता का दुख दूर करना राम जानते हों या न जानते हों, परन्तु राम का दुख तो सीता ने दूर कर ही दिया, राम को अपनी बिछड़ी पत्नी और अपने बेटे प्राप्त हो गये। सीता को अपनी कीर्ति, अपना यश, अपनी विमलता की प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो गई। इस प्रकार यह सुखान्त नाटक समाप्त हुआ।

श्री बाल्मीकीय रामायण तथा उत्तर रामचरित नाटक में आपने इस अत्यन्त करुणा पूर्ण कथानक को इस रूप में देखा। पिछले सहस्रों वर्षों से भारतीय जनता इस कथानक को पढ़ती, सुनती, रोती और सिर धुनती चली आयी है और सहस्रों वर्षों से वह करुणा विगलित होकर सीता के प्रति किए गए अन्याय को याद कर आक्रोश से राम की मर्यादाशीलता, न्याय-प्रियता और वीरत्व पर शंका करती तथा लव के शब्दों में कहती आयी है,

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते।
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्य कुण्ठयशसो लोके महान्तोहिते।
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने।
यद्वा कौशलमिन्द्र सूनुनिधने तत्राप्य भिज्ञो जनः।

"श्री रामचन्द्र आलोचना करने योग्य नहीं हैं। (बड़ों की भी भला कभी आलोचना करनी चाहिए !) यहाँ पर उनके सम्बन्ध में कुछ भी कहना उचित नहीं है ! अबला ताड़का को मारकर ही वह संसार में पूजनीय हैं। और, राक्षस के साथ लड़ते समय तीन पग पीछे हट जाने की बात और बालि बध सम्बन्धी उनके कौशल को कौन नहीं जानता ?"

जनता के मन में यह आक्रोश है कि सीता जब निर्दोष थी तो राम ने उन्हें निर्वासित क्यों किया ? लोकापवाद से भय राजाराम को था ? हुआ करे ? परन्तु व्यक्ति और नागरिक राम को किस बात का भय था ? सीता निष्पाप थी। राम लक्ष्मण दोनों को यह अच्छी तरह पता था। फिर भी पुरुषोत्तम राम ने अपने प्रभुत्व की मर्यादा के दम्भ में, सीता को बिना बताए, बिना उनसे कुछ भी पूछे, धोखा देकर, उन्हें गर्भवती स्थिति में अकारण बन भेज दिया। क्या राम का यह कार्य उचित था ? बाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्य सब ऋषियों, मुनियों, संतों और विचारकों के अथक प्रयत्नों के बावजूद सहस्रों वर्षों से जनता का सरल मन यही कहता आया है कि राम ने अन्याय किया, अपने अहं तथा स्वार्थ की रक्षा के लिए, अपना यश बनाए रखने के लिए निरपराध सीता का बलिदान कर दिया।

लोक गीतों में यह विचारधारा, यह भावना और भी अधिक उभरकर, खुलकर सामने आयी है। लोक मानस पूरी तरह सीता के साथ है। जनता के सरल कोमल हृदय ने साफ देखा है कि उसकी बेटी, उसकी बहिन, उसकी बहू सीता के साथ राम ने घोर अन्याय किया है। इसीलिए वह राम को क्षमा नहीं कर सका है। आइये, जनता के आंसुओं से लिखे इस लोकगीत की करुणा धारा में हम भी अपने को डुबा दें।

ननद भौजाई दूनो पानी गई, अरे पानी गई।
भौजी, जौन रवन तुहें हरि लेइग उरेहि दिखावहु।
जौ मैं रवना उरेहौं उरेहि दिखावहुं।
सुनि पैहैं बिरन तुम्हार ते देसवा निकरिहैं।

सीता जी श्रीरामचन्द्र की बहिन के साथ एकबार पानी भरने चलीं। रास्ते में ननद भौजाई में बातें हो रही थीं। बात ही बात में ननद ने भौजाई से कहा, "भौजी, जो रावण तुमको हर ले गया वह किस तरह का था, कैसा था, जरा उसका चित्र बनाकर दिखाओ तो।"

सीता जी ने जवाब दिया कि, "यदि मैं रावण का चित्र बनाऊँगी और उसे बनाकर तुम्हें दिखाऊँगी तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। अगर तुम्हारे भैया सुन लेंगे कि मैंने उनके शत्रु और अपने को हरकर ले जाने वाले रावण का चित्र बनाया तो उन्हें मेरे चरित्र पर संदेह हो जायेगा। वह समझेंगे कि मैं रावण से अब भी स्नेह करती हूँ इस कारण क्रुद्ध होकर वह मुझे इस देश से निकाल देंगे।"

लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
भौजी, लाख दोहइया लछिमन भैया जो भैया से बतावौं।

सीता जी की ननद ने कहा, "मैं अपने पिता राजा दशरथ की लाखों दोहाइयाँ देकर कहती हूँ, मैं राम का माथा छूकर शपथ लेती हूं, मैं अपने भाई लक्ष्मण की भी लाख दोहाई देकर वचन देती हूँ कि मैं यह बात अपने भाई से न बताऊंगी। तुम मेरी बातों पर विश्वास करो और रावण का चित्र बनाकर मुझे दिखा दो।"

सरलहृदया, निष्कलुषमना सीता ने अपनी ननद की बातों पर विश्वास कर लिया। उन्होंने कहा—

मांगो न गांग गंगुलिया गङ्गा जल पानी।
ननदी समुहे कै ओबरी लिपावउ मैं रवना उरेहौं।
मंगिन गांग गंगुलिया गंगा जल पानी।
सीता समुहें का ओबरी लिपाइन त रवना उरेहैं।

"अच्छा, गंगाजल मंगवा लो और सुनो, तुम सामने वाली कोठरी को लीप पोतकर दुरुस्त करा दो तो मैं रावण का चित्र बना दूं।" गंगाजल आ गया। सामने की कोठरी भी साफ कराकर लिपा दी गयी। इसके बाद सीता जी ने रावण का चित्र बनाना शुरू कर दिया।

हथवउ सिरिजन गोड़वहु नयना बनाइन।
आई गए सिरीराम अंचर छोरि मूँदिनि।

सीता जी ने धीरे धीरे रावण का चित्र बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने पहिले हांथ बनाया फिर पांव का चित्र खींचा। बाद में आँखें बनायीं। इस प्रकार सीता जी रावण के शरीर के विभिन्न अंग चित्रित कर रही थीं कि उधर से राम आ निकले। तब इस डर से कि कहीं रामचन्द्र जी उस चित्र को न देख लें सीता जी ने उसे अपने आंचल से ढंक लिया। इस प्रकार चित्र छिप गया और राम जी उसे देख न सके। और, उस वक्त की मुसीबत टल गयी।

परन्तु सीता जी की ननद कब मानने वाली थीं? अगर वह चुप रह जातीं और अपने बचन के अनुसार रामजी से यह बात न बतातीं तो लोक परम्परा में प्रसिद्ध ननद भौजाई की जन्मजात ईर्ष्या और द्वेष आदि की बात कैसे सच होती? ननद को अपना स्वाभाविक काम करना ही था। इसलिए जब राम चन्द्र घर में आये और चौके में पहुँचे तो ननद जी के नये अभिनय के लिए रंगमंच प्रस्तुत हो गया।

जेवन बैठे सिरी राम बहिन लोहि लाइन।
भइया जौन रवन तोर बैरी त भौजी उरेहैं।

श्री रामचन्द्र भोजन करने बैठे तो उनकी बहिन ने उनके कान भरे, लाई लगायी। उन्होंने रहस्यात्मक ढंग से, शिकायत भरे अन्दाज में राम चन्द्र जी से कहा, "भैया क्या बताऊँ? कुछ कहा नहीं जाता। परन्तु बिना कहे रहा भी नहीं जाता। मैंने अपनी आंख से देखा है कि जो रावण तुम्हारा बैरी था, भौजी उसका चित्र उतारा करती हैं।"

इतना सुनते ही राम आग बबूला हो गए। उन्होंने सीता जी से कुछ पूछना भी उचित न समझा। उन्होंने आव देखा न ताव, फौरन उन्होंने हुक्म दे दिया—

अरे रे लछिमन भइया, विपतिया के नायक।
सीता के देसवा निकारहु ई त रव ना उरेहैं।

"अरे विपत्तियों के दिनों के साथी, मेरे भाई लक्ष्मण, तुम सीता को देश निकाला दे दो। इसे शीघ्र अयोध्या से बाहर निकाल कर जंगल में छोड़ आओ। यह तो रावण का चित्र खींचती है (अर्थात् यह मुझे प्यार नहीं करती। यह उस रावण को अब भी याद करती है जिसकी लंका में वह इतने दिनों रही है। हो सकता है कि वहां रहने के कारण उसके मन में मेरे शत्रु रावण के प्रति ममता उत्पन्न हो गयी हो। ऐसा सीता ने तब किया जब कि इसी सीता को बचाने के लिए मैंने इतना बड़ा युद्ध किया। अतः यह पापिनी है, कलंकिनी है, इसे शीघ्र घर से निकालो और जंगल में छोड़ आओ!)

रामजी के इस आदेश से लक्ष्मण जी हतप्रभ हो गए। वह जानते थे कि सीता जी सर्वथा पवित्र हैं। उनके सामने ही सीता जी ने अग्नि परीक्षा देकर अपने को पवित्र साबित कर दिया था। फिर भी राम अकारण उनके चरित्र पर सन्देह कर रहे थे। लक्ष्मण यह अन्याय बर्दाश्त नहीं कर सकते। उन्होंने जीवन भर अन्यायों का विरोध किया था। यहाँ भी उन्होंने कहा—

जे भौजी भूखे का भोजन, नांगे के बस्तर
से भौजी गरुवे गरभ से मैं कैसे निकारों।

"सीता पवित्र हैं, सीता निरपराध हैं। वह धर्म परायणा हैं, दया और स्नेह की मूर्ति है। उनके हृदय में अपार करुणा का सागर हिलोरें लेता रहता है। उनकी दया की हद यह है कि वह भूखे के लिए भोजन बन गयी हैं, वह नंगे के लिए वस्त्र बन गयी हैं। जो दानशीलता की प्रतिमा हैं, उदारता और करुणा जिनका सहज शृंगार है, ऐसी पावन, पवित्र, धर्म प्राण, भाभी को घर से निकाल देना असम्भव है। फिर यह भी तो

सोचना चाहिए कि इस समय वह गर्भवती हैं। दिन पूरे होने को आए हैं। उनकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह यह धक्का सह सकें। गर्भवती स्त्री को घर से निकाल देना शास्त्रों के विरुद्ध है, अनीति है, पाप है।" इसलिये लक्ष्मण अपनी गर्भवती भाभी सीता को अकारण घर से निकालने के लिए राज़ी न हुए।

मगर राजा राम, पुरुष राम, स्त्री के पति और उसके जीवन के मालिक राम, कब लक्ष्मण की नीति युक्त बातें सुनने वाले थे? इससे तो उनके पति और पुरुष और मालिक होने की भावना को धक्का लगता था। फिर, एक बार उनके मुँह से जो बात निकल गयी, जो आदेश निकल गया वह भी तो किसी न किसी प्रकार पूरा होना ही चाहिए था। उन्होंने फिर कहा, "भाई लक्ष्मण? तुम मेरे विपत्तियों के साथी हो। यह सीता रावण का चित्र उतारती है। मुझे इसके चरित्र पर सन्देह है। तुम इसे घर से निकाल दो और बन में छोड़ आओ।"

अब लक्ष्मण मजबूर हो गये। दूसरी बार जब राम ने अपनी बात दोहराई तो लक्ष्मण के पास चुप रहने के अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता न रह गया। विवश हो कर वह भाभी सीता के पास पहुँचे और बोले—

अरे रे भौजी सीतल रानी, बड़ी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहका नेवतवा, विहान बन चलबै।

लक्ष्मण की हिम्मत न पड़ी कि वह सीता को असल बातें बता देते। जिस सीता जी की पवित्रता के साक्षी वह स्वयं थे, जिसे उन्होंने केवल मां के रूप में देखा था, जिसके नुपुरों के अतिरिक्त किसी अन्य गहने को उन्होंने वन में वरसों चौबीस घंटा साथ रहने पर भी कभी नहीं देखा था, जो सीता आदर्श भाभी और आदर्श पत्नी थीं, और जो सीता इस समय गर्भवती थीं उनको बिना किसी अपराध के घर से निकाल देने का आदेश राम ने दे दिया था। लक्ष्मण क्या करते? भीतर आग लगी हुई थी। विद्रोह, क्रोध और अन्याय जनित प्रतिहिंसा तक की भावना जाग उठी थी। परन्तु वह मर्यादाशील व्यक्ति थे। बड़े भाई की आज्ञा का पालन उन्हें करना

ही था । साथ ही सीता भाभी से कठोर शब्द बोलना भी असम्भव था। लक्ष्मण ने बहाना किया। कहा, "बन से निमंत्रण आया है। मेरी प्यारी भाभी, मेरी अच्छी नेक ठकुराइन, हम दोनों कल बन चलेंगे।"

सीता जी को हैरानी हुई, बन से निमंत्रण, वहां तो—

ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर,
देवरा, ना रे जनक अस बाप, मैं केहि के जइहौं !

मिथिला के राजा जनक ने तो निमंत्रण भेजा नहीं था। राजा जनक बन में तो रहते नहीं थे। बन में ससुराल भी न थी। वह तो स्वयं अयोध्या में उपस्थित थीं। फिर निमंत्रण कैसा ? किसका निमंत्रण और क्यों ? इस स्थिति में बन में किसके पास जाएँगी ?

लक्ष्मण ने सीता जी को समझाया, जो भी तर्क दे सके दिया, जो भी बहाना बना सके बनाया। सरलहृदय सीता जी ने अपने देवर की बातों पर विश्वास कर लिया। वह लक्ष्मण के साथ बन जाने को तैयार हो गयीं। जाते समय सीता जी के मन में किसी प्रकार का संशय नहीं था। वह किसी तरह यह सोच भी नहीं सकती थीं कि लक्ष्मण उन्हें धोखा देंगे। इसलिए जाते समय,

कोंछवा के लिहिन सरसइया छिटत सीता निकसीं।
सरसो, यही क अइहीं लछिमन देवरा कंदरिया तोरि खइहैं।

सीता जी ने अपने कोइछा में सरसों भर लिया और चलते समय उसे छींटती गयीं। सरसों को सहेजती गयीं कि वापिसी में देवर लक्ष्मण जब इधर से निकलेंगे तो भूखे होंगे और वह सरसों की कंदरी (कोमल डन्ठल) तोड़कर खायेंगे। (सीता जी के हृदय में इस समय भी देवर लक्ष्मण के लिए जो सहज ममता भरी हुई थी उसी का प्रमाण सरसों का यह छींटना है!)

एक बन डाकिन दूसर बन डाकिन तिसरे विन्द्राबन।
देवरा एक बूंद पनिया पिअवतेव पियसिया से व्याकुल।

सीता जी लक्ष्मण जी के साथ चलीं। उन्होंने एक बन पार किया। दूसरा बन पार किया और फिर वृन्दाबन पहुँच गयीं। (लोक गीतों में अक्सर वृन्दाबन का अर्थ साधारण बन ही माना गया है)। वहां पहुँची तो सीता जी को बहुत तेज प्यास लगी। बाल्मीकि अथवा तुलसीदास की सीता होतीं तो बात दूसरी थी। यह तो ग्राम वासिनी सीता थीं। लक्ष्मण के साथ पैदल बन यात्रा कर रही थीं। दो दो बन पार कर चुकने के बाद उनका इस प्रकार प्यास से परेशान हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। उन्होंने कहा, "हे देवर, मैं प्यास से व्याकुल हो रही हूँ। एक बूंद पानी पिला देते।"

लक्ष्मण ने कहा,

बैठहु न भौजी चंदन तरे, चंदना बिरिछ तरे।
भौजी पनियाँ क खोजि करि आई त तुमका पियाई।

लक्ष्मण ने आगे यात्रा स्थगित कर दी। उन्होंने कहा, "भाभी, आप चन्दन के वृक्ष के नीचे, शीतल छाया में बैठें। मैं पानी ढूँढने जाता हूँ। पानी लाकर मैं अभी आप को पिलाता हूँ।"

लक्ष्मण पानी लाने के लिए चले गये। उधर सीता जी आराम से वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। शीतल बयार चलने लगी। शीतल छाया थी ही। सीता जी श्रमश्लथ हो चुकी थीं। थोड़ा सा आराम मिला, धरती पर लेट गयीं। वह कुम्हला कर, प्यास से व्याकुल होकर, सो गयीं।

उधर लक्ष्मण जी ने कदम के पत्तों का दोना बनाया। उसमें पानी भरकर लक्ष्मण जी सीता जी को पिलाने के लिए आए। यहाँ आकर उन्होंने सीता जी को गहरी नींद में सोती पाया। लक्ष्मण जी ने सोचा यही मौका है कि उनको चुपके से निकल जाना चाहिए। लक्ष्मण जी ने यही किया। लक्ष्मण जी ने जिस समय यह कायरता पूर्ण धोखे का काम किया होगा उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी? वह अपनी मातृवत भाभी को इस दुरावस्था में, पूर्णतया अरक्षित, बिना उनसे कुछ सुने छोड़कर चोरों की तरह, चुपके से भाग निकले। उनकी हिम्मत न पड़ी कि वह सीता जी को जगाकर, उनको पानी पिलाकर, उनसे आज्ञा लेकर वापिस जाते। वह सीता

जी को धोखे से बन लाए थे। और सीता जी को धोखा देकर वह चुपके से चल दिये।

थोड़ी देर में सीता जी उठीं और चकपका कर चारों ओर देखने लगीं। वह उठ बैठीं। उनकी नजर लवंग के पेड़ से टंगे दोने पर पड़ी। वह विलाप कर उठीं।

कहाँ गए लछिमन देवरा त हमें न बतायउ।
हिरदइया भर देखतेऊँ, नजर भर रोउतेऊँ।
को मोरे आगे पीछे बैटइ, को लट छोरै।
को मोरी जागि रयनियाँ त नरवा छिनावइ।

"हाय, मेरे देवर लक्ष्मण। तुम कहाँ चले गए? हाय तुम मुझसे कहकर क्यों नहीं गए? यदि तुम मुझसे कहकर जाते तो तुम्हें कम से कम एक बार जी भर कर देख तो लेती। जाते समय तुम्हें देखकर अच्छी तरह रो तो लेती। अब मेरा क्या होगा? कौन मेरे आगे पीछे बैठेगा? कौन मेरी देख रेख करेगा? कौन मेरे बाल खोलेगा? कौन मेरे साथ रात भर जागेगा? कौन नारा काटेगा?"

लक्ष्मण की क्रूरता सीता जी को खल गयी। लक्ष्मण का इस तरह जाना सीता की बहुत बड़ी पीड़ा का कारण हुआ। परन्तु लक्ष्मण के लिए एक भी कठोर शब्द उन्होंने नहीं कहा। उलटे वह सोचकर बिलखती रहीं कि जाते समय लक्ष्मण को वह देख भी नहीं सकीं।

अब उनको अपनी गर्भावस्था का ध्यान आ गया। अपनी निर्जनता से वह घबरा गयीं। आगे पीछे कोई नहीं था। इस कठिन समय में कौन उनकी मदद करता? सीता जी निराशा, अवसाद, भय और अनिश्चयता के भंवर में डूबने लगीं। वह अपनी विवशता पर विलाप करने लगीं। उनकी करुण चीत्कार से सारा बन गूंज उठा। उसी समय उस निर्जन बन में से तपस्विनियाँ निकलीं और उन्होंने सीता जी को समझाना शुरू किया—

सीता हम तोरे आगे पीछे बैठब, हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रयनियाँ त नरवा छिनउबै।

हम तुम्हारे आगे पीछे रहेंगी, तुम्हारी देख भाल करेंगी, तुम्हारा जूड़ा खोलेंगी, तुम्हारे साथ रात भर जागेंगी, हम नारा काटेंगी। उन तपस्विनियों ने समझाया और आश्वस्त किया कि चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है, सीता अपने को अकेली न समझें, उनकी सेवा परिचर्या के लिए, देखभाल के लिए, सब प्रकार की सुविधा पहुँचाने के लिए, वे सदैव तत्पर रहेंगी।

किसी तरह रात कटी। लोहा लगा। अरुणोदय हुआ। और, उसी भोर बेला में सीता जी को दो पुत्र उत्पन्न हुये। पुत्र उत्पन्न होने पर तपस्विनियों ने सीता जी से कहा कि वह लकड़ी जलाकर उजाला कर लें और उसी रोशनी में बच्चों का मुँह देख लें। सीता जी को इस समय बड़ा दुख था। अयोध्या के राजा रामचन्द्र के बच्चों का जन्म ऐसी दयनीय स्थिति में हुआ यह सोच कर सीता जी का कलेजा फटा जा रहा था। उन्होंने रोकर कहा—

तुम पूत भयेहु विपति में, बहुतै सांसति में,
पूत, कुसै ओढ़न कुस डासन बन फल भोजन।

"हाय मेरे बच्चो, कैसी विपत्ति में तुम्हारा जन्म हुआ है! कितनी सांसत में, कितनी कठिनाई और मुसीबत में तुम पैदा हुए हो! हाय, तुम्हें कुश का ही ओढ़ना कुश का बिछौना मुयस्सर हो रहा है! बन में फलों को ही खाकर तुम्हें संतोष करना होगा।"

जो पूत होते अयोध्या में, वही पुर पाटन,
राजा दशरथ पटना लुटौतें, कौसल्या रानी अभरन।

"मेरे बच्चो, यदि तुम्हारा जन्म अयोध्या में हुआ होता, यदि तुम अपनी राजधानी में पैदा हुए होते तो आज राजा दशरथ सारा शहर लुटा देते, कोशल्या रानी सारे कपड़े गहने लुटा देतीं।"

परन्तु यहाँ तो परिस्थिति ही दूसरी थी। इन बच्चों की माँ सीता परित्यक्ता थीं, निर्वासिता थीं। उस बन प्रान्त में उन तपस्विनियों के अतिरिक्त उनको पूछने वाला और कौन था? माँ के हृदय के इस क़लक को, इस

ग्लानि और पीड़ा को कौन समझ सकता था। परन्तु सीता के पास चुप रह जाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या था ?

उसके बाद सीता जी ने वन के नाई को बुलाया कि वह जल्दी आवे और उनका रोचना लेजाकर अयोध्या पहुँचा दे। वहाँ वालों को यह सन्देश दे दे कि सीता को पुत्र उत्पन्न हुए हैं। नाई के आने पर सीता-गर्वीली, मानिनी सीता ने उसे सहेजा—

पहिले दिहौ राजा दशरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तीसरे रोचना लछमन देवरा, पै पिये न जनायउ।

"पहिले रोचना राजा दशरथ को देना, दूसरे रोचना कौशल्या रानी को देना, तीसरे रोचना मेरे देवर लक्ष्मण को देना, पर मेरे पति रामचन्द्र से कुछ मत कहना, उनसे मत बताना कि मेरे बच्चे पैदा हुए हैं।"

नाई ने ठीक यही किया। उसने सबसे पहले राजा दशरथ को रोचना दिया, फिर उसने रानी कौशल्या को रोचना दिया। अन्त में उसने लक्ष्मण देवर को रोचना दिया। परन्तु उसने रामचन्द्र से कुछ न कहा। राजा दशरथ ने इस सुखद समाचार को सुनकर खुश होकर नाई को अपना घोड़ा दे दिया। रानी कौशल्या ने उत्साह के कारण उसे गहने दिये। लक्ष्मण न उसे पाँचों जोड़े दिए। वह बहुत प्रसन्न होकर वन की ओर लौटा।

कथा आगे चलती है। नाई के वन लौट जाने पर लक्ष्मण और राम की भेंट होती है। राम प्रातःकाल तालाब के किनारे खड़े हैं।

चारिउ खूंट का सगरवा त राम दतुइन करें।

राम चौकोर तालाब के एक घाट पर खड़े हैं और वहीं दतुवन कर रहे हैं। उसी समय लक्ष्मण वहाँ आते हैं। उनका माथा चन्दन, अक्षत, रोली आदि से जगमगा रहा है। जब लक्ष्मण राम के निकट पहुँचते हैं तो उन्हें देखकर राम पूछते हैं—

भइया महर महर करै माथ रोचन कहं पायउ।
भइया केकरे भए नंदलाल त जिया जुड़वायन।

"भाई लक्ष्मण, तुम्हारा माथा इस तरह चमक रहा है। बताओ,

तुमको यह रोचना कहाँ मिला ? इस रोचना से तो यह पता चलता है कि किसी के घर बच्चा हुआ है। भैया, किसका कलेजा ठंडा हुआ है, किसकी गोद भरी है, किसके घर बच्चा पैदा हुआ है ?

भौजी तो हमरे सितल रानी बसहिं बिन्द्रावन।
उनके भये हैं नंदलाल, रोचन सिर धारेन।

लछमण ने छोटा सा परन्तु स्पष्ट उत्तर दिया, "मेरी भाभी रानी सीता को, जो कि इस समय वृन्दावन (जंगल) में रहती हैं, पुत्र उत्पन्न हुए हैं। वहीं से मेरे लिये रोचना आया था, जिसे मैंने अपने माथे पर लगा रक्खा है।"

लक्ष्मण का यह उत्तर सुनकर राम अवाक् और स्तम्भित रह गये। हाथ की दतुइन हाथ में और मुंह की मुंह में ही रह गयी। राम की आँखों से मोती के दानों की तरह आँसू झरने लगा। किसी प्रकार राम ने अपने को सम्भाला, अपनी ग्लानि और अपमान तथा अपने प्रति सीता, लक्ष्मण आदि की उदासीनता की पीड़ा को चुपचाप सहा। उन्होंने बन जाते हुए नाई को बुला मंगवाया। राम उससे मिलने और सीता का हाल चाल सुनने के लिए उद्विग्न हो रहे थे। नाई के आने पर राम ने उससे कहा, "तुम सीता रानी का पूरा हाल मुझे सुनाओ। मैं सीता को बन से वापिस बुलाना चाहता हूँ।"

कुस रे ओढ़न, कुस डासन, बन फल भोजन।
साहब, लकड़ी का कीहिन अंजोर, संतति मुख देखिन।

"सीता जी के बारे में क्या कहूँ ? वह तो कुश का बिस्तर बिछाकर उसी पर सोती हैं। वह कुश का ओढ़ना ही ओढ़ती हैं। बन में जो कुछ फल फूल उन्हें मिल जाता है वही उनका आहार है। उनकी दशा कितनी दयनीय है, मैं क्या बताऊँ ? मालिक आप उनकी दशा का अन्दाज़ इसी बात से लगा सकते हैं कि उन्हें अपनी सन्तान का मुख, खुद अपने हांथ से लकड़ी जलाकर, उसी के प्रकाश में देखना पड़ा था।"

राम आगे न सुन सके। उनका कलेजा फटने लगा। राम को उस समय कितना पछतावा हुआ ? उन्हें उस समय कितनी पीड़ा हुई ? अन्त में

राम ने लक्ष्मण को बुलाया और कहा, "तुम मधुवन जाकर किसी प्रकार अपनी भाभी सीता को वापिस ले आओ।" बड़े भाई रामचन्द्र की आज्ञा सिर पर धारण कर लक्ष्मण फिर वन पहुँचे और भाभी से कहा कि, "राम ने तुम्हें बुलाया है, अयोध्या चलो।"

सीता जी ने लक्ष्मण की बात ध्यानपूर्वक सुनी। उन्होंने अपने देवर से कहा—

देवरा, जाहु लवटि तु अजोध्या त हम नहि जावै।
लछिमन, अंखिया में पटिया बंधावा, अजोध्यां दिखावा।

"मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण, तुम अयोध्या लौट जाओ। मैं अयोध्या किसी भी प्रकार नहीं जा सकती।" इतना कहने के बाद सीता जी को लक्ष्मण की मर्यादा का ध्यान आया। आखिर, लक्ष्मण देवर थे न! सीता जी ने कहा, "मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण यह तो सही है कि मैं राजा राम की आज्ञा मानकर अयोध्या वापिस नहीं जा सकती। राम ने मुझे अकारण निर्वासित किया है। इसलिए उनकी आज्ञा मानने का प्रश्न नहीं उठता। तुम्हारी बात अवश्य मैं रखना चाहती हूँ। तुम मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दो। मैं थोड़ी दूर तुम्हारे साथ अयोध्या की दिशा में चलूंगी और फिर वापिस आ जाऊंगी। इस तरह तुम्हारी ज़िद पूरी हो जायगी और मेरी टेक भी।" ऐसा ही हुआ। सीता लक्ष्मण के साथ थोड़ी दूर तक अयोध्या की ओर गयीं और फिर अपने आश्रम में वापिस चली आयीं।

सम्भवत: अन्तिम बार लक्ष्मण ने फिर सीता पर अयोध्या वापिस चलने के लिये जोर डाला तो सीता जी ने कहा—

जाव लछन घर अपने त हम नहि जावै।
जौ रे जिये नंदलाल तो उनहीं का बजिहैं।

"नहीं लक्ष्मण, तुम अपने घर जाओ। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी। यदि मेरे ये बेटे जी गये तो उनके ही बेटे कहलायेंगे।"

"ये बेटे उनके ही कहलायेंगे," कहकर सीता जी ने केवल अपने ही

हृदय की पीड़ा को व्यक्त नहीं किया है। उन्होंने आक्रोश और व्यंग्य में रामचन्द्र को भी याद किया है। राम ने अपने को लोक प्रिय राजा कहलाने के अहं की प्यास बुझाने के लिए निर्दोष सीता को, अपनी गर्भवती सती निष्कलुष पत्नी को, बलिदान कर दिया। सीता इस बात को, इस अनाचार को, इस दुर्व्यवहार को क्षण मात्र के लिए भी भूल नहीं सकी। राम जानते थे कि पुर वासियों ने सीता पर मिथ्या आरोप लगाया था। फिर भी सीता को निर्वासित करके उन्होंने उस मिथ्या आरोप को प्रश्रय दिया। अपनी लोकप्रियता की वेदी पर गर्भवती सीता की बलि चढ़ा दी। फिर सीता उसी अयोध्या में, उसी अन्यायी पति के पास कैसे जातीं ? वह तो उस दिशा की ओर देखना भी नहीं चाहतीं। इसीलिए जब वह अयोध्या की ओर लक्ष्मण के साथ कुछ कदम चलीं तो उन्होंने अपनी आंखों पर पट्टी लगा ली थी। उनका कहना था, जब राम ने उन्हें इस तरह अपमानित करके निकाल दिया तो फिर अब मोह दिखाने, ममता प्रदर्शित करने, स्नेह का ढिंढोरा पीटने से क्या लाभ ? सीता जानती थीं कि राम का रुख पुत्रों के पैदा होने का समाचार पाने से ही बदला है। इससे वह और भी तड़प उठीं। उन्होंने साफ देख लिया कि इसमें भी राम की स्वार्थ भावना काम कर रही है। राम सीता को निर्वासित करने के बाद अपनी वंश परम्परा के सम्बन्ध में चिन्तित और दुखी रहे होंगे। लव कुश के जन्म के बाद उनकी चिन्ता मिट गयी। राम ने सोचा होगा कि अब इन बच्चों का जन्म तो कुशल पूर्वक हो गया, गद्दी के उत्तराधिकारी पैदा हो गए। इसीलिए अब वह यह मोह ममता दिखा रहे हैं। इसी प्रकार की बातें सोच कर सीता जी ने कहा, "ये लड़के आखिर उन्हीं के तो कहलायेंगे।"

"जौ रे जिएं नन्दलाल तो उनही क बजिहैं", में "क" की जगह "से" हो जाने से इस पूरे वाक्य का अर्थ बदल जाता है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने "बजिहैं" का अर्थ "कहलाएंगे" किया है। जिस क्षेत्र में वह रहते हैं वहाँ यही अर्थ चलता है। भोजपुरी में भी यही अर्थ लिया गया है। भोजपुरी में यह पंक्ति इस प्रकार है—

लखन, जो रे ई जीहैं नन्दलाल त उन्हीं के कहइहैं, हो।

यदि ये लड़के जीते रहेंगे तो उनके (राम के) ही कहलाएंगे।

परन्तु मैं 'से' पर ही जोर देना चाहता हूँ। इसका कारण यह है कि अब तक सीता जी का जो रुख दिखाई देता है और इस परिस्थिति में जो रुख प्रत्येक स्वाभिमानी, संत्रस्त, पीड़ित और अरक्षिता महिला का होना चाहिए, वह "कै" की जगह "से" का प्रयोग कर देने से पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाता है।

"जौरे जिएं नन्दलाल तो उनही से बजिहैं", का अर्थ होगा "ये बच्चे यदि जीते रहे तो अवश्य 'उनसे' लड़ेंगे", अपनी मां के प्रति किए गये अन्याय का बदला लेंगे। जो सीता अयोध्या की ओर फूटी आंखों से भी नहीं देखना चाहतीं, जो सीता लक्ष्मण के कारण दस पांच कदम अयोध्या की ओर जाती भी हैं तो आंखों पर पट्टी बांधकर, वह सीता यह बात भी कह सकती हैं।

इस लोक गीत में अब तक हम सीता का जो रूप देखते आए हैं वह गाँव की साधारण, अकृत्रिम, स्वाभाविक बेटी या बहू का है। उसमें लोकोत्तर दैवी गुणों का आरोप बिल्कुल नहीं किया गया है, उसके बात चीत और व्यवहारों पर बलात् भगवती होने का मुलम्मा नहीं चढ़ाया गया है। इसीलिए वह क्रोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा आदि से भी प्रेरित होती [illegible] कह सकती हैं कि हमारे बेटे बड़े होने पर जब यह सुनेंगे कि उन[illegible] साथ उनके बाप ने इस प्रकार का अन्याय किया तो वे अवश्य अप[illegible] से युद्ध करेंगे और अपनी मां के साथ किए गए अन्यायों का बदला लेंगे।

वे बेटे इसी भावधारा में पले इसका प्रमाण पूरा लव कु[illegible] है। इस काण्ड की रचना सम्भवतः इसीलिए की गयी थी कि सीत[illegible] जो व्यवहार किया गया और जिस प्रकार वह स्वर्ग चली गई, व[illegible] फिर न मिलीं, न उनसे बातें कीं और जिस तरह उनके बेटों ने [illegible] रामचन्द्र की पूरी सेना तथा सारे भाइयों का मुकाबिला रणक्षेत्र में [illegible] वे सारी बातें उन्हें कहनी थीं।

लव कुश कागड में, लव कुश ने सबसे पहिले शत्रुघ्न को परास्त किया। जब लक्ष्मण सामने आये तो उन बालकों ने हंस कर कहा—

"अनुज बिलोकहु जाय अब, प्रबल महारणधीर", और मोहन अस्त्र से लक्ष्मण को भी बेहोश कर दिया। लक्ष्मण की अपार सेना भाग चली। बचे खुचे लोगों ने राम को बताया—

जेहि विधि कटक सकल संहारा, निज लोचन हम नाथ निहारा।
वय किशोर दोउ बाल अनूपा, तव प्रतिबिम्ब मनहुँ सुर भूपा।

यह सुनकर भरत ने रोकर कहा, "मुझे तो लगता है कि विधाता ने सीता जी को निर्वासित करने का ही फल हमें इस रूप में दिया है।" राम को ताव आ गया। उन्होंने भरत को डांट दिया कि, "तुम लड़ाई के नाम से ही दिल छोटा करने लगे! जाओ, हाथी, घोड़ा, रथ आदि सजा कर युद्ध भूमि में जाओ। यदि तुम्हारी हिम्मत नहीं पड़ती तो मैं यज्ञ छोड़कर जाऊँगा और फिर उन शत्रुओं को देख लूँगा। हों न हों ये दुखदायी बालक रावण के ही बेटे हैं।"

इस प्रकार इतना सब कुछ हो जाने के बाद राम के मन का पाप निकल पड़ा—

रहैं यज्ञ, रिपु देखहु जाई। बालक रावण के दुखदाई॥

और, जब राम अपने ही बेटों को रावण के बेटे कह सकते हैं, जब वह अब भी सीता को अपवित्र कह सकते हैं तो सीता भी यह कह सकती हैं कि, "मेरे बेटे बड़े होकर ऐसे अन्यायी पिता से अपनी मां के अपमान का बदला लेंगे।"

भरत युद्ध करने पहुँचे। उनके साथ हनुमान, सुग्रीव, अंगद और विभीषण भी थे। जब हनुमान ने प्यार जताना चाहा तो बालक बोले—

नहिं बल होहि जाहु घर भाई। हतौं न ठौर जान कदराई॥

जब अंगद को सामने देखा तो कुश से न रहा गया,

बोले कुश सुन बालि कुमारा।
तुम बल बिदित जान संसारा।

पितहिं मराय मातु पर हेली।
सकल लाज आए तुम पेली।
सो फल लेहु समर मंह आजू।
त्यागहु सकल कलंक समाजू।

इसके बाद सबके साथ भरत भी युद्ध में सो रहे। लव ने सबको युद्ध में सुलाकर अपने भाई कुश को गले लगा लिया। भरत के भूमि में सोने का समाचार राम को मिला तो वे यज्ञ छोड़कर, सक्रोध मैदान में आए। उन्होंने दोनों बालकों को देखा और प्यार से पास बुलाकर मां बाप का नाम ग्राम आदि पूछा। इस पर उन वीर बालकों ने जवाब दिया—

गहहु अस्त्र, जनि कहहु कहानी।
पूछहु नाव गांव कह जानी।
समर बात बहु अति कदराई।
छांड़ि सोच अब करहु लराई।

राम ने फिर कहा,

बंश नाम बिनु पूछेहु ताता।
हतौं न बाण मनोहर गाता।

तब उन बालकों ने बताया,

माता सीय, जनक की जाता।
बाल्मीकि पाल्यौ मुनि ताता।
पिता बंश नहिं जानहिं आजू।
लव कुश नाम सुनहु रघुराजू।

अब राम की मनोदशा कैसी थी? वह क्या कहते? क्या करते? उन वीर बालकों का सामना कैसे करते? उन्होंने यह कहकर टाल दिया, "हमारे बीर योद्धा आ रहे हैं। वे तुम लोगों से युद्ध करेंगे।" राम ने सभी मूर्छित बीरों को जगा दिया। और फिर विकट संग्राम हुआ। विभीषण के सामने आते ही क्रोध से लाल होकर लव ने कहा—

सुन सठ बंधुहि समर जुझाई।
शत्रुहि मिलेउ निपट कदराई।
पिता समान बंधु बड़ तोरा।
त्रिया तासु तै घर बर जोरा।
पापी, मातु कही कइ बारा।
सो पत्नी, यह धर्म तुम्हारा।
बूड़ मरहुं सागर महं जाई।
मरु गर काटि, अधम अन्यायी।
समर भूमि मम सम्मुख आवा।
लाज होत नहिं गाल बजावा।
आंखिनि आगे ते हटि जाई।
नहिं तौ मृत्यु निकट चलि आई।

इसके बाद घमासान संग्राम हुआ और राम के सभी योद्धा मारे गए, या वेहोश हो गये। तब हनुमान को लव ने बांधकर घोड़े के पास रख दिया और राम के पास पहुँचे। वहाँ रथ पर राम को वेहोश पड़ा देखकर, संकोच वश लव वापिस लौट आये। दोनों भाई सारे वस्त्राभूषणों के साथ हनुमान और घोड़े को लेकर सीता जी के पास आये। सीता जी ने हनुमान जी को पहिचान लिया और उनको शीघ्र मुक्त करने की आज्ञा दी। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि इन लड़कों ने शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत तथा राम को युद्ध में सुला दिया तो वह विलाप कर उठीं।

"रिपु दमन, लछिमन, सहित भरतहिं राम समर सो आयऊ।
सुत, कीन्ह कर्म कलंक कुल मंह, मोंहि विधि विधवा करी।
तजि सोच, चन्दन अगर आनहुं जाउं पिउ संग अब जरी।"

सीता का विलाप सुनकर बाल्मीकि मुनि ने उन्हें आश्वस्त किया और दोनों बच्चों को लेकर वह राम के पास गए। घोड़ा और रथ को पहिचान कर उन्होंने राम को पुकारा और कहा, "जागो राम, तुम्हारे दोनों बेटे तुम्हारे सामने खड़े हैं।"

राम जाग गये। भरत, लक्ष्मण आदि सभी को होश आ गया। राम ने लक्ष्मण को फिर समझाने के लिए सीता के पास भेजा। लक्ष्मण ने सीता जी को फिर समझाने की चेष्टा की, परन्तु उसी समय धरती फट गयी और उसमें से शेष की फणि पर रत्नजटित सिंहासन उभरा। शेष जी आदर के साथ—

जटित मणिन सिंहासनहिं,
सादर सीय चढ़ाय,
भए अलोप पताल महं,
महिमा किमि कहि जाय।

धरती पुत्री सीता धरती की कोख में वापिस चली गयीं। लक्ष्मण मुँह ताकते रह गए।

ऊपर हमने जो कहा और लव कुश काण्ड से जो उदाहरण दिये वह इस "क बजिहैं" के स्थान पर "से बजिहैं" के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए। हमारे इस लोक गीत में कोई नई बात नहीं कही गयी। यह भावना परम्परा से ही ली गयी है।

राम ने माघ की नौमी को यज्ञ आरम्भ किया। बिना सीता के यज्ञ कैसे हो? राम ने सीता को वापिस लाने के लिए गुरु बशिष्ठ से अनुनय विनय किया। कहा, "पाँव पड़ता हूँ। सीता को वापिस लाइए। वह आप ही के मनाने से आने को राज़ी होंगी।"

गुरु बशिष्ठ लक्ष्मण को साथ लेकर वाल्मीकि के आश्रम में सीता की कुटिया की ओर चले। वहाँ सीता पहिले से ही राह देख रही थीं। उन्होंने देखा कि लक्ष्मण के साथ गुरु बशिष्ठ चले आ रहे हैं। सीता जी ने पत्तों का दोना बनाया और उसमें गंगाजल भरकर गुरु बशिष्ठ के पाँव धोना और चरणोदक माथे पर चढ़ाना शुरू किया। गुरु बशिष्ठ ने सीता की भक्ति भावना से प्रभावित होकर और सुअवसर जानकर कहा,

येतनी अकिलि सीता तोहरे, तु बुधि के आगरि।
किन तुम हरा है गियान, राम बिसरायउ।

"सीता तुम्हारे पास इतनी अक्ल है। तुम तो बुद्धि का भाण्डार हो। लेकिन समझ में नहीं आता कि किसने तुम्हारा ज्ञान हर लिया कि तुमने राम को भुला दिया ?"

सीता जी को उत्तर देते देर न लगी। अभी तक गुरु बशिष्ठ ने सीता जी का केवल अत्यन्त विनय पूर्ण रूप देखा था। परन्तु घायल सिंहनी का रूप उन्हें देखना बाकी था। मर्माहत नारी जब फुफकारती है तो बड़े बड़ों का कलेजा दहल जाता है। सीता के मन में गहरी वेदना थी। वह तड़प उठीं। उन्हें क्षण भर में अपनी अग्नि-परीक्षा की याद आयी, अपनी गर्भावस्था की याद आयी, राम का अन्याय याद आया, उनका स्वाभिमान जागा और अपने सारे क्रोध, पीड़ा और चोट को संयम के आवरण में ढंक कर उन्होंने कहा—

सबकै हाल गुरु जानौ, अजान बनि पूछौ।
गुरु, असके राम मोहिं डाहिन कि कैसे चित मिलिहैं।
अगिया में राम मोहिं डारेनि लाइ भुजि काढ़ेनि।
गुरु, गरुवे गरभ ते निकारेनि त कैसे चित मिलिहै।
तुम्हरा कहा गुरु करबै, परग दुई चलबै।
गुरु अब न अजोधियै जाब, औ विधि न मिलावै।

"गुरुदेव, आप सबका हाल जानते हैं। आप मेरे हृदय की पीड़ा को समझते हैं। आपको मेरे क्रोध का अन्दाज़ है। आप जानते हैं कि राम ने मेरा अकारण अपमान किया है, फिर भी आप अनजान बनकर पूछ रहे हैं! गुरुवर, राम ने मुझे इतना अधिक सताया है, तड़पाया है, जलाया है कि अब उनसे मेरा चित्त कदापि नहीं मिल सकता। राम ने मुझे आग में डाला। मुझे उसमें अच्छी तरह भूना और तब उसमें से निकाला। फिर भी उन्होंने मेरे दुखों का विचार नहीं किया। दूसरी बार जब उन्होंने मुझे निकाला तो मैं गर्भवती थी। परन्तु उनको मेरे ऊपर ज़रा भी दया नहीं आयी। अब आप ही बताइए मेरा उनका चित्त कैसे मिलेगा ? हम दोनों के बीच जो गाँठ पड़ गयी है, वह कैसे खुलेगी ? फिर भी गुरुदेव,

मैं आपके आदेश का पालन करूंगी। मैं आप के साथ दो कदम अयोध्या की ओर चलूँगी जिससे आप का मान रह जाय। परन्तु गुरुवर, मेरा यह निश्चय है कि अब मैं अयोध्या न जाऊँगी। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे राम से कभी भी न मिलावे।"

सीता जी का स्पष्ट और दृढ़ उत्तर सुनकर गुरुदेव वशिष्ठ चुप हो गए। उनके मुँह से बोल नहीं निकला। वह चुपचाप अयोध्या वापिस चले गये।

अयोध्या पहुँचकर गुरु वशिष्ठ ने सारा समाचार राम को सुनाया। राम समझ गए सीता ऐसे आने वाली नहीं हैं। उन्होंने स्वयं जाकर सीता को बन से वापिस लाने का निश्चय किया। कहारों को आज्ञा मिली, "चन्दन की पालकी सजाओ। मैं सीता को उसी पालकी में बैठाकर अयोध्या वापिस लाऊँगा।" कहारों ने पालकी सजायी और अयोध्या के राजा रामचन्द्र बनवासिनी सीता को साग्रह वापिस बुलाने के लिये चले। उन्होंने एक बन पार किया। फिर दूसरा बन पार किया। फिर वृन्दावन पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने मृगया के चक्कर में पड़े, आखेट करते नहीं, गुल्ली डण्डा खेलते दो बालकों को देखा। उन दोनों बालकों का सौन्दर्य देखकर रामचन्द्र मोहित हो गये। राम उन बालकों के पास गए और उनसे पूछा,

केकर तू पुतवा नतियवा, केकर तू भतिजवा हो।
लरिको, कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुड़वायु हो।

"मेरे प्यारे बच्चो, तुम किसके पुत्र हो, किसके नाती हो, तुम किसके भतीजे हो, तुमने किस माता की कोख में जनम लेकर उसे शीतलता प्रदान की है?"

उन भोले भाले बनवासी बालकों ने तपाक से उत्तर दिया,

हम राजा जनक के है नतिया, सीता के दुलरुवा हो।
बाप क नौवा न जानौ, लखन के भतिजवा हो।

"हम राजा जनक के नाती हैं, सीता माता के हम दुलारे बेटे हैं। हम बाप का नाम नहीं जानते, हाँ लक्ष्मण के भतीजे हम अवश्य हैं।"

राम के ऊपर जैसे सहसा वज्रपात हो गया हो। उनके होश गुम हो गए। इन बच्चों की बातें कुछ सुनी कुछ सुन भी न सके कि उनकी आंखों से तरतर आँसू गिरने लगे। आँसू गिरते जाते थे और राम उन्हें अपने पटुका से पोंछते जाते थे। परन्तु आँसू रुकने का नाम न लेते।

किसी तरह राम वहाँ से आगे बढ़े और धीरे धीरे बाल्मीकि ऋषि के आश्रम के पास पहुँच गए। वहाँ कदम का छायादार वृक्ष बड़ा सुन्दर लग रहा था। वहां पहुँच कर राम ने देखा,

तेहिं तर बैठीं सीतल रानी, केसियन झुरवई।

उसी कदम के शीतल छांह में बैठकर सीता जी अपने बाल सुखा रही थीं कि उनको किसी की आहट मिली। उन्होंने पीछे उलट कर देखा रामचन्द्र खड़े दिखाई दिये। सीता ने चुपचाप अपना सिर नीचे कर लिया।

राम ने अपने को सम्भाल कर कहा—

रानी, छोड़ि देव जियका विरोग, अजोधिया बसावउ।
सीता, तोरे बिन जग अंधियार, त जीवन अकारथ।

"रानी तुम अपने मन की ग्लानि, संताप, पीड़ा आदि को भूल जाओ और चलकर उजड़ी उदास अयोध्या को फिर से बसा दो, उसे श्री सम्पन्न कर दो। सच सीता, तुम्हारे बिना तो मुझे यह संसार अंधेरा मालूम होता है, यह जीवन निरर्थक और व्यर्थ मालूम पड़ता है। तुम चाहो तो मेरे जीवन में फिर से प्रकाश आ जाय, उसे सार्थकता प्राप्त हो जाय। चलो सीता, अयोध्या वापिस चलो।"

इसके बाद जो हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह मौन परन्तु अत्यन्त उद्घोषित, पाषाणवत किन्तु अत्यन्य कोमल, शांत किन्तु आन्दोलित कर देने वाली शक्तियों से परिपूर्ण एक विचित्र, अप्रत्याशित व्यापार था!

सीता अंखिया में भरला विरोग एक टक देखिन।
सीता धरती में गइलीं समाय कुछौ नहीं बोलिन।

संयम तथा मर्यादा की मूर्ति सीता की आंखों में उनके हृदय की

सारी वेदना, सारी पीड़ा, सारी व्यथा उमड़ आयी। परित्यक्तता, बहिष्कृता, उपेक्षिता, निन्दिता सीता की सारी स्मृतियाँ जाग उठीं, गौरी पूजन के समय का प्रथम परिचय, धनुष भंग का दृश्य, बन गमन का समय, पंचवटी का सहवास, अशोक बाटिका का जीवन, अग्नि परीक्षा की घटना, राज्याभिषेक, गर्भाधान, द्वितीय बार वनगमन, आश्रम में वनवासिनी देवियों की सहायता से पुत्र जन्म, लक्ष्मण तथा वशिष्ठ का अयोध्या वापिस जाने के लिए अनुरोध और अन्त में, इस हालत में, राम का स्वयं आकर अयोध्या चलने के लिए कहना, सारी रोमांचकारी, गर्वीली, उन्मादिनी, फिर भी दुखी बनाने वाली, रुलाने वाली, आक्रोश उत्पन्न करने वाली स्मृतियाँ और अन्त में राम का आगमन, ओह, यह सब क्या हुआ? यह सब क्यों हो रहा है? निर्दोष, स्वाभिमान की पुतली, गर्वीली भारतीय नारी की सारी महिमा और गौरव का प्रतीक सीता, कुछ न बोल सकीं, कुछ न बोलीं। बस उन्होंने एक बार ध्यान से, आँखें गड़ाकर, एक टक, राम को देखा और धरती में समा गयीं।

'उत्तर रामचरित' नाटक की सीता ने तो धरती से प्रार्थना भी की थी "णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा।" परन्तु इस लोक गीत की सीता ने तो इतना भी न कहा। वह चुप चाप धरती में समा गयीं।

सीता चुप रहीं, कुछ नहीं बोलीं? क्यों? इसका उत्तर वही नारी हृदय दे सकता है जिसकी चुनौती, जिसकी करुणा, जिसकी वेदना इतने दिनों से इन पंक्तियों में व्यक्त होती आयी है। अतिशय क्रोध, अतिशय करुणा, अतिशय वेदना के समय वाणी मूक हो जाती है, आँखें सूख जाती हैं, सारा शरीर स्तम्भित, अडोल हो जाता है। सीता की मानसिक अवस्था ऐसी ही थी। उनकी मूकता में पाश्चात्ताप था, उपेक्षा थी, क्रोध था, प्रतिहिंसा थी, करुणा थी, पीड़ा थी, स्वाभिमान था, मर्यादा थी, संयम था, मनस्विता थी, स्नेह था, त्याग था; और, सर्वोपरि निर्दोष नारी के आत्म-गौरव की चुनौती थी।

सीता अखियाँ में भरलीं विरोग, एक टक देखिन ।
सीता धरती में गइलीं समाय, कुछौ नहि बोलिन ।

इन पंक्तियों में लोक गीतकार ने उस स्थिति विशेष में सीता जी की मानसिक अवस्था का जो चित्र खींच दिया है वैसा चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। बाल्मीकि की सीता ने सभा के बीच अपनी सफ़ाई दी थी, अपने को निर्दोष कहा था। इसके बाद उन्होंने धरती माता से कहा था "विवरं दातुमर्हति।" 'उत्तर रामचरित' की सीता ने अपनी कोई सफाई न दी। जब गंगा और पृथ्वी अपनी ओर से सीता की सफाई देने लगीं तो सीता को बड़ी उलझन हुई। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने पृथ्वी माता से कहा, "णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा। ण सहिस्सं ईरिसं जीअलोअस्स परिभवं अणुभविदुम् (मां मुझे अपने अंगों में छिपा ले। मृत्यु लोक में मैं इस प्रकार का अपमान सहन करने में असमर्थ हूँ) ! इसके बाद लव कुश के जन्म के उपरान्त सीता धरती की गोद में समा गयीं।

धरती की गोद में सीता जी सिंहासन पर बैठ कर गयीं। बाल्मीकि की सीता आखिकार अयोध्या की महारानी थीं। धरती में समाने के समय भी सिंहासन पर ही जाना उनके लिये जरूरी था। 'उत्तर राम चरित' की सीता भी रसातल को गयीं। परन्तु गंगा का जल खौलने लगा और आकाशवाणी हुई, "हे विश्व वन्द्ये अरुन्धती, हम दोनों गंगा और पृथ्वी को संतुष्ट करो। तुम्हारी पुण्यव्रता बहू को हम तुम्हें सौंपती हैं।"

इसके बाद सीता जी रंगमंच पर आयीं और अरुन्धती की आज्ञा से उन्होंने राम को, उनका बदन छूकर, जाग्रत कर दिया। अरुन्धती द्वारा फिर यह कहे जाने पर कि "सीता पवित्र हैं, गंगा और पृथ्वी सीता की पवित्रता की साक्षी हैं, राम ने सीता को स्वीकार कर लिया। परन्तु उस समय भी सीता ने स्वगत ही कहा, "क्या आर्य पुत्र मेरे दुख को दूर करना जानते हैं ?" इन शब्दों में सीता ने अपनी ग्लानि और व्यथा के साथ ही छिपे आक्रोश और एक हद तक अविश्वास को भी प्रकट किया है।

लवकुश काण्ड में भी सीता ठाट बाट से धरती की गोद में जाती हैं,

जटित मणिन सिंहासनहिं,
सादर सीय चढ़ाय।
भए अलोप पताल मंह,
महिमा किमि कहि जाय।

परन्तु लोक गीत की सीता किसी प्रकार की साक्षी नहीं देतीं, अपनी सफाई में कुछ नहीं कहना चाहतीं। वह राम के सामने दीन हीन बनना, शरणागत होना, अपराध स्वीकार करना या किसी प्रकार का समझौता करना नहीं चाहतीं। वह चुप चाप राम को एक बार देखती हैं, फिर बिना कुछ कहे सुने धरती में समा जाती हैं। वह धरती माता से विवर प्रदान करने की विनती भी नहीं करतीं। सीता को विश्वास है कि उनकी माँ उनकी व्यथा को पूरी तरह समझती हैं। वह माँ भी क्या जो अपनी बेटी की मर्म-व्यथा को न समझ सके? वह माँ भी क्या जिससे बेटी को विवर देने, गोद में लेने के लिये, प्रार्थना करनी पड़े। सीता धरती की बेटी थीं। धरती स्वयं इस समय करुणा विगलित होकर अपनी बेटी के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अगर फट जाती हैं तो यह स्वाभाविक ही है। यदि ऐसा न होता तो पूरी बात हास्यास्पद हो जाती।

श्री बाल्मीकि रामायण, उत्तर रामचरित नाटक, लवकुश काण्ड, तथा लोक गीत की सीता के चरित्र में जो अन्तर है, वह हमारे सामने है। इनमें कौन सा चरित्र अस्वाभाविक है, कौन सा स्वाभाविक है; कौन सा चरित्र जीवन की सच्चाई के निकट है, कौन दूर है; किस चरित्र का रूप हमें अपने परिवारों की लड़कियों में देखने को मिलता है, और अन्त में कौन सा चरित्र हमारे मर्म को सबसे अधिक छूता है, झंझोड़ता है, यह स्पष्ट है।

दूसरी बात यह है कि चारों उदाहरणों में से एक में भी सीता राम राम के पास जाकर उनसे अपनी सफ़ाई नहीं देतीं। राम ने स्वयं सीता को

बनवास देते समय उनसे से कोई पूछ ताछ नहीं की थी। पत्नी के रूप में, जीवन संगिनी के रूप में, राम ने सीता का कोई मूल्य नहीं माना था। उन्होंने जो कुछ किया राजा और शासक की हैसियत से किया। अपने मन में राम चाहे जो कुछ सोचते रहे हों, सीता को चाहे जितना पवित्र मानते रहे हों, सीता के लिए चाहे जितना भी करुणा विगलित और प्रेमातुर हुए हों, परन्तु व्यवहार में उन्होंने एक कठोर शासक की ही भाँति काम किया। जनापवाद की उनको चिन्ता थी। नागरिकों के मत की अवहेलना वह नहीं कर सके। इसके लिए राम आदर्श राजा, प्रजा के मत का आदर करने वाले शासक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। परन्तु राजा राम ने रानी सीता के व्यक्तित्व का आदर नहीं किया। रानी की बात छोड़िये। उन्होंने सीता को वह अवसर भी नहीं दिया जो साधारण नागरिक अभियुक्त को दिया जाता है। सीता को अपनी बात कह पाने का अधिकार न देकर श्री राम ने लोकतंत्र की मर्यादा की रक्षा की, यह कैसे मान लिया जाय ? इसलिये यदि श्री बाल्मीकि रामायण, उत्तर रामचरित नाटक और लवकुश काण्ड की सीता ने राम से इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं की, जो कुछ कहा सबके सामने, सबको अपनी ओर अभिमुख करके कहा तो कोई अस्वाभाविक बात न थी। सीता जी को निजी रूप से जो कहना था वह तो उत्तर रामचरित नाटक में उन्होंने स्वगत ही कह दिया।

जब बाल्मीकि, भवभूति और तुलसीदास (यद्यपि लवकुश काण्ड को अधिकतर विद्वान प्रक्षिप्त मानते हैं) की सीता ने राम के सामने अपनी सफ़ाई न दी तो लोकगीतकार ने ऐसा करके कोई अपराध नहीं किया। बल्कि सीता को बिल्कुल मौन रखकर सीता के महान चरित्र को चार चाँद लगा दिए। मनस्विनी सीता का यह रूप हमारी परम्परा में सुरक्षित है, यह लोक मानस की जागरुकता का ही प्रमाण है।

सीता के मुख से "उनहीं क बजिहैं" अथवा "उनहीं से बजिहैं" कहलाकर भी लोक गीतकार ने कोई नई अथवा अस्वाभाविक बात नहीं की। यह भी परम्परा से ही पुष्ट बात थी। जितने रूप अब तक सीता जी

के चरित्र के हमारे सामने आए सबमें इन वाक्यों की पुष्टि किसी न किसी रूप में जो जाती है। हां, सीता का यह परम्परागत रूप लोकगीतकार के हाथों से अधिक स्पष्ट और उजागर हो गया है।

अन्त में लोकापवाद का प्रश्न रह जाता है। जिन महाकवियों ने रामचन्द्र जी को सम्राट के रूप में चित्रित किया, राम की मर्यादा को इस रूप में देखा, उनसे तो अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं और सीता का पक्ष लेकर अनेक प्रकार की बातें कही जा सकती हैं। परन्तु लोक गीत में राम का यह रूप नहीं है। बल्कि सीता को राम की बहिन ने लांच्छित किया है। उन्होंने पहिले सीता को रावण का चित्र बनाने के लिए विवश किया। फिर इसकी शिकायत राम के पास भोजन के समय कर आयीं। राम को सब्र कहाँ? सीता से कुछ पूछने की क्या जरूरत? बहिन की बात पर भाई विश्वास क्यों न करे? सीता का क्या? वह तो महज़ स्त्री थीं? स्त्री का भी कोई व्यक्तित्व होता है? उसकी भी कोई मर्यादा, कोई स्वाभिमान होता है? फिर उससे पूछ ताछ करने की जरूरत ही क्या? झट देश निकाला का दण्ड राम ने सीता को दे दिया।

ननद भौजाई के इस प्रकार के सम्बन्ध और पति का अपनी बहिन की बातों पर विश्वास करके अपनी पत्नी को दण्डित करना ग्राम जीवन की दैनिक घटना है। लोक गीतकार ने इसी दैनिक जीवन की घटना को इस प्रसंग में भी स्थान देना उचित समझा। यह सर्वथा स्वभाविक है।

इस प्रकार इस लोक गीत में, समाज में प्रचलित, साधारण परम्पराओं, विश्वासों, रीतियों और प्रथाओं का आधार लेकर सीता के चरित्र का ऐसा रूप खड़ा किया गया है जो सर्वथा स्वाभाविक और चिर-परिचित है, जिससे हमारा सजीव सम्बन्ध है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने इस गीत (वस्तुतः यह गीत अलग अलग दो भागों में है) से निकले कुछ विशेष तत्वों की ओर ध्यान दिलाया है जो इस प्रकार हैं : इस गीत के आरम्भ में ही चित्र खींचने का वर्णन आता

है जो इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ साधारणतया चित्रकला से प्रेम रखती थीं। ननद भौजाई की ईर्ष्या द्वेष आदि से सभी परिचित हैं। यहाँ राम की बहिन के इस स्वभाव का परिचय हमें मिला। देवर भाभी का प्रेम भी हमारे पारिवारिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है। भ्रातृभक्त लक्ष्मण ने राम का उस समय प्रतिवाद किया जब राम ने सीता को निकालने का आदेश दिया। जब राम ने अपना आदेश फिर दोहराया तो लक्ष्मण अवज्ञा न कर सके। जंगल में निरीह, परवश, असहाय सीता को तपस्विनियों का सहज स्नेह और सहानुभूति प्राप्त हुई। सच्चे स्नेह और सहज करुणा और सक्रिय सहयोग का यह अनुपम उदाहरण है। अबला माँ की दयनीय दशा जब कि उसके बच्चों को ऐसी सांसत में जन्म लेना पड़े और मां को बन की लकड़ी जलाकर उनका मुँह देखना पड़े, किसका हृदय न पिघला देगी? पुत्र जन्म की खुशी, परन्तु "पिये न बतायउ" का आदेश, प्रसन्नता और पश्चात्ताप का यह संगम, राम की आंखों से तरर तरर आँसुओं का चूना कितना मार्मिक है! "पिये न बतायउ" कह कर सीता ने जिस स्वाभिमान और आत्म सम्मान का परिचय दिया उससे प्रत्येक नारी का सिर ऊँचा उठ जाएगा। लक्ष्मण के साथ आंख पर पट्टी बांधकर कुछ दूर अयोध्या की ओर जाना, फिर आश्रम की ओर वापिस हो जाना, यह कहना कि यदि ये नन्दलाल जीते रहे तो उन्हीं के कहलाएंगे, अथवा उनसे अपनी मां के अपमान का बदला लेंगे, गुरु बशिष्ठ के समझाने पर सीता का प्रथम अग्नि परीक्षा की याद दिलाना, फिर गर्भावस्था के समय अकारण निष्काषित होने पर यह कहना कि "त कैसे चित मिलिहैं", राम द्वारा परिचय पूछने पर लव कुश का यह उत्तर कि "बाप क नौंवां न जानों" और अन्त में राम के यह कहने पर कि "तुम्हारे बिना जीवन अकारथ है, जग अंधियारा है, इसलिए चलकर अयोध्या बसाओ" सीता का आंखों में विरोग भरकर राम को एक टक देखना, फिर बिना कुछ बोले, बिना कुछ कहे सुने धरती में समा जाना, ये सब बातें ऐसी हैं जिनपर प्रत्येक स्वाभिमानी नारी को गौरव और गर्व अनुभव होगा, सच्चा संतोष प्राप्त होगा।

हमने ऊपर धरती की बेटी ग्रामवधू सीता के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली अति प्रचलित लोक गीत की व्याख्या की। इस गीत में सीता तो साधारण ग्रामीण घराने की बहू के रूप में चित्रित की गई हैं परन्तु राम को साधारण मानव के रूप में चित्रित करते हुए भी पति के रूप में उनके कार्यकलाप और व्यवहारों पर उतना विशद प्रकाश नहीं पड़ा है। नीचे हम श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'बेला फूले आधी रात' से एक उड़िया लोक गीत का एक अत्यन्त रोचक अंश प्रस्तुत कर रहे हैं। इस गीत में राम और सीता दोनों सहज मानव प्राणी, अति सरल पति पत्नी के रूप में हमारे सामने आते हैं।

सीताया जेयुँथीरे गुयागुँडी राम सेईथीरे पान—
सीताया जेयूँथीरे टोकई कुँठई राम सेई थीरे धान—

—'जहाँ सीता सुपारी है, वहाँ राम पान हैं, जहाँ सीता टोकरी हैं, वहाँ राम धान हैं।'

राम हेला जल् सीता हेला लहुड़ी
राम हेला मेघ सीता हेला घड़घड़ी
राम हेला दही सीता हेला लहुणी
राम हेला घर सीता हेला घरणी

—'राम जल हो गये और सीता जल-तरंग, राम बादल बन गये और सीता बिजली की गरज बन गईं,

राम दही बन गये और सीता मक्खन, राम घर बन गये और सीता घरवाली।'

उधर सीता जी का वक्तव्य सुनिए—

मुकता मुकता बोलंति मुकता
केऊंठी मुकता के जाने
जगत समुका रघुमणि मुकता
ए परि मुकता के जाने

जीवण बिकि यूं कीणीली मुकता
ए पॉर बिका किणां के जाने

—'मोती मोती तो सब कोई कहता है पर मोती है कहाँ, इसे कौन जानता है ? जगत सीप है और रघुमणि राम मोती हैं। ऐसे मोती की किसे खबर है ? मैंने अपना जीवन बेचकर यह मोती खरीदा है। ऐसी बिक्री और खरीद और कौन जानता है ?'

पत्नी को पति से जो प्रेम हो सकता है, उसकी यहां पराकाष्ठा है ! सीता जी के मुख से राम के प्रति प्रेम का चित्रण करने में ग्रामीण उत्कल का लोक-कवि बहुत सफल हुआ है। राम की निर्धनता समीप से देखिये—

छिड़ा लूगा पिंधी सीताया ठाकुराणी
दौदरा गिन्ना रे भात खाई छंति रघुमणी, महाप्रभु से !
सीताया झुरुछंति नुया लूगा पांइ
लइखन झुरुछंति पखाल भात पांई, महाप्रभु से !
सीताया झुरुछंति नाक गुणां पांई
राम बुलूछंति नड़िया आणिवा पांई, महाप्रभु से !
कांदी कांदी सीता खीर दुहुछंति
मा घर कथा भले पकाऊ छंति, महाप्रभु से !

—'सीता ठाकुराणी फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए हैं, राम टूटे बर्तन में भात खा रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता नये वस्त्रों के लिए तरस रही हैं, लक्ष्मण पखाल भात के लिए तरस रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता जी नाक गुणां[1] के लिए तरस रही हैं, राम नारियल लाने के लिए भटक रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता जी आँख में आँसू भरकर दूध दुह रही हैं, वे माता के घर को यादकर रही हैं, हे महाप्रभु !'

राम खजूर का रस पीने जा रहे हैं—

---

१. नाक का आभूषण जिसे उड़िया स्त्रियाँ बड़े चाव से पहिनती हैं।

छिंड़ा लूँगा पिंधी राम जाऊथीले
खजूरी गच्छर रस काढ़ीवाकु मो बाईधन
दूरु देखी सीता अइला धांइ
धरि पकाईला राम र हस्तकु मो बाईधन
कि पाई धांईयों खजूरी गच्छ कु
लइखन ईहा देखी कि कहिबे तुम्भंकु

—'फटे-पुराने वस्त्र पहने राम जा रहे थे खजूर वृक्ष का रस निकालने, ओ मेरे बाईधन। दूर से देखकर सीता जी दौड़ती हुई आईं, राम का हाथ पकड़ लिया। खजूर के वृक्ष की ओर क्यों जा रहे हो? लक्ष्मण देखेगा तो क्या कहेगा?'

उड़ीसा में खजूर के वृक्ष बहुत होते हैं। खजूर का रस मदिरा के रूप में पिया जाता है। प्रायः पुरुष ही इसका सेवन करते हैं, स्त्रियाँ नहीं।

देखिए लक्ष्मण जी चटनी के कितने शौकीन हैं—

अंब कसी तोली लईखन आणीले
सीताया ठाकुराणी चटनी बाटीले
रघुमणि राम खाईछंति हलिया हे
टिकिए चटनी मोते देयो आणी हो...सीताया ठाकुराणी
चटणी गल सरी लईखन कांदूछंति जे।

—'लक्ष्मण कच्चे आम लाये और सीता ने चटनी पीसी। हे किसान, सारी की सारी चटनी राम खा गये, थोड़ी सी चटनी मुझे भी दे दो। चटनी खतम हो गई, लक्ष्मण जी रो रहे हैं।'

कुछ गीतों में राम के घर में गाएँ दिखाई गई हैं। यदि सचमुच उन दिनों घर-घर गाएँ होती थीं तो राम के घर भी अवश्य रही होंगी। यदि केवल इतना ही कह दिया जाता कि राम के घर में गाएँ थीं तो कदाचित अधिक रस न आता। यहाँ लक्ष्मण की गाय अधिक दूध देती है। राम की गाय का दूध सूख जाता है। लक्ष्मण सीता जी के लिए कपिला गाय लाते हैं। सीता जी राम के लिए तो चंदन की लकड़ी पर दूध गरम करती हैं

परन्तु लक्ष्मण को नारियल देकर ही उनका मुँह मीठा करने का यत्न करती हैं। इस प्रकार के उतार-चढ़ाव की कल्पना हमें राम के घर में ले जाती है और हम राम की छोटी से छोटी बात से परिचित हो जाते हैं—

राम लईखन दुई गोटी भाई
दूई भाई कीणीले जे कपिला गाई।
लईखनंक गाई बेशी खीर देला
रामंक गाई-र खीर सूखी गला।
कांदूछंति सीता ठाकुराणी हे—हलिया......
कि बुद्धि करिबे से.................।
आणी ले लईखन अयुध्यापुरी कु
गोटिये कपिला गाई, मो राम रे।
ताहा देखी- सीता रामंकु कहिले,
आणीवाकु से परि गाई, मो राम रे।
से परि गाई कुयाड़े न पाइले
खोजी खोजी राम होईलन बाई, मो राम रे।
एहा जाणी सीता कांदीवाकु लागीले;
झुरु बस्सी थाई भात पकाई, मो राम रे।
एहा जाणी लईखन सीतांकु कहिले
कांही कि कांदीछो छार कथा पांइ, मो राम रे।
रामंक पांई ए देह धरिली
तुम्भरी पांई आणीछी ए गाई, मो राम रे।

—'राम और लक्ष्मण दो भाई थे। दोनों भाइयों ने दो कपिला गाएँ खरीदीं। लक्ष्मण की गाय अधिक दूध देती रही। राम की गाय का दूध सूख गया। हे किसान, सीता ठकुराणी रो रही हैं; बेचारी क्या करें ?'

'लक्ष्मण अयोध्या से लाए एक कपिला गाय, मेरे राम। उसे देखकर सीता ने राम से कहा—मेरे लिए भी ऐसी ही एक गाय ला दो, मेरे राम।

वैसी गाय कहीं भी न मिली। राम खोज खोज कर थक गए, मेरे राम। यह जानकर सीता जी रोने लगीं, भात फेंक कर उदास हो गईं, मेरे राम।

'यह जानकर लक्ष्मण ने सीता से कहा—जरा सी बात के लिये क्यों रोती हो? मैंने यह शरीर राम की सेवा के लिए धारण किया है, तुम्हारे लिये ही मैं यह गाय लाया हूँ।'

एक और गीत में लक्ष्मण का चित्र अंकित किया गया है—

मालिया चन्दन आणी सीता तींया कले
वेग कपिला गई-र खीर तताईले, महाप्रभु से।
भरि करि खीर सुनार गिन्ना-रे
रघुमणि रामंक हस्त-रे देले, महाप्रभु से।
भूक-रे कटाऊथीले लईखन कुड़िया
सीताया देखी आसी ताकु देले नड़िया, महाप्रभु से।
अभागा लईखन आकुले कांदीले
एहा छांड़ी आऊ किछी करि न पारीले, महाप्रभु से।

—'मलय चन्दन की लकड़ी लाकर सीता जी ने आग जलाई जल्दी-जल्दी कपिला गाय का दूध गरम किया। सोने की कटोरी में दूध भरकर उसने रघुमणि राम के हाथ में दिया। भूखा लक्ष्मण कुटिया में झाड़ू दे रहा था। सीता ने उसे देखा तो उसे नारियल दे दिया। अभागा लक्ष्मण व्याकुल होकर रोने लगा। वह और कर ही क्या सकता था?'

राम-बनवास के उड़िया लोकगीत भारतीय लोक-साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। उड़िया भाषा की माधुरी और उत्कल प्रान्त के स्वप्नों ने मिलकर ऐसे सुन्दर काव्य की सृष्टि की है जिस पर कोई भी भाषा गर्व कर सकती है।'

इस मधुर गीत की समता सूरदास के बालकृष्ण से सम्बन्धित गीतों से ही की जा सकती है। 'ठुमुकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनियां' के बावजूद हिन्दी के शिष्ट साहित्य में अथवा रामायण में ही राम लक्ष्मण के जीवन के ऐसे बाल सुलभ चित्र हमें कहां मिलते हैं? यह तो लोकगीतकार के

सरल मन की ही विशेषता है कि उसमें उतर कर राम लक्ष्मण सचमुच हमारे घर के भोले भाले बच्चे बन जाते हैं और सीता महारानी भी हमारे घर की पतोहू और भाभी जैसा प्रकृत, स्वाभाविक, सहज और मधुर व्यवहार करने लगती हैं। राम लक्ष्मण सीता से सम्बन्धित इस तरह के मनोमोहक गीत हमें सभी बोलियों में मिल जाते हैं। ये लोक गीत राम लक्ष्मण सीता को हमारे परिवार का अंग बना देते हैं और हम उनके आंसुओं के साथ रोने और उनकी ठठोलियों के साथ हँसने लगते हैं। इसके लिये हम अपने इन लोक गीतकारों के सत्यमेव कृतज्ञ हैं।

विवशता की चीत्कार

सत्यार्थी जी के 'बेला फूले आधीरात' में पठानों का एक गीत है जो करुण रस से परिपूर्ण है। इस गीत में एक अछूती ममता और एक सरल प्रेम उस व्यक्ति के लिये प्रकट किया गया है जिसे बादशाह ने सूली पर चढ़ाने का हुक्म दिया है। गीत यह है—

बादशाह ब ललै ख़ानई द से ख़लक वाई
चे प दारे स्वरावीना
ख़ानई मिरज़ा अकबरी
प कद बाला प हुस्न पूरा ख़ानई
जान त मग़रुरा द ग़ुलाम ग़ुलाम दे ज़मा ख़ानई
बादशा ब ललै............
यवा द खुतन द नाफे बुई दे ख़ानई
या अम्बरिन ज़ुल्फे जानान स्पड़दली दिना ख़ानई
बादशाह ब ललै.........
स्तरगे ब वले उख़ के नकड़ी ख़ानई
चे प मौसम द खुशाली राग़ल ग़मुना ख़ानई
बादशाह ब ललै.........
आसमान दे कोर त पके न्वरे ख़ानई
ज़ न्वर परस्त गुल पशान मख दरपसे ब्ड़मा ख़ानई

सामाजिक सच्चाई

एक गढ़वाली लोकगीत है। इस गीत में, बिल्कुल नये ढंग से, हमारे समाज की स्थिति का चित्रण किया गया है। गीत इस प्रकार है—

अइजा अग्नी, अइजा अग्नी, मेरा मातृलोक, मेरा मातृलोक।
त्वै बिना अग्नी ब्रह्मा भूखो रैगे, ब्रह्मा भूखो रैगे।
कनकै की औलो, कसुकै कि औलो, तेरा मातृ लोक,
तेरा मातृ लोक, ये बुरो अत्याचार, ये बड़ो अत्याचार।
क्या होलो अग्नी बुरो अत्याचार, क्या होलो अग्नी बड़ो अत्याचार।
मेरा मातृ लोक, बुरो अत्याचार, मेरा मातृलोक बड़ो अत्याचार।
ब्रह्मा ह्वै की, ब्रह्मा ह्वै की झूठ बोलला, ये अत्याचार ते क्या अत्याचार।
माया धीया, माया धीया ऊजो पैछो, बेटा बाबू लेखो जोखो।
बुआरी ह्वै की सासु अढ़ाली, नैनो होई की बाबू पढ़ा लो।
ये अत्याचार ते क्या बड़ो अत्याचार, कनुकै की औलो।
कनुकै की औलो, तेरा मातृ लोक ये बुरो अत्याचार,
ये बड़ो अत्याचार।
अइजा अग्नी, अइजा अग्नी मेरा मातृलोक, मेरा मातृ लोक।

इस गीत में अग्निदेव से प्रार्थना की गयी है कि वे इस लोक में आवें क्योंकि ब्रह्मदेव यहाँ भूखे हैं। अग्निदेव के बिना वे कैसे और क्या खाते? अग्निदेव उत्तर देते हैं कि "किस प्रकार मैं तुम्हारे पास तुम्हारे मातृ-लोक में आऊँ? तुम्हारे मातृलोक में तो तो बहुत बुरे बुरे और बहुत बड़े बड़े अत्याचार होते हैं। ऐसे पापों और अत्याचारों से भरे लोक में मैं कैसे आ सकता हूँ?"

प्रार्थी विनम्र होकर पूछता है, "देव, आखिर बताइये तो हमारे लोक में कौन से ऐसे बुरे बुरे और बड़े बड़े अत्याचार होते हैं, कौन से ऐसे पाप होते हैं जिनके कारण आप हमारे मातृलोक में आने से हिचकते हैं?"

अग्निदेव—"तुम्हारे मातृलोक में मां बेटी में 'ऊजापैछा' होता है, बाप बेटे में लेन देन होता है, लिखा पढ़ी होती है। बहू अपनी सास को

सीख देती है। बच्चा अपने बाप को पढ़ाता है, ज्ञान सिखाता है। इससे बढ़कर और कौन अत्याचार, कौन पाप हो सकता है? बताओ, ऐसी हालत में मैं तुम्हारे मातृ लोक में कैसे आऊँ। वहाँ तो इतने बड़े बड़े अत्याचार होते हैं?"

"हे अग्निदेव, मेरे मातृ लोक में आओ, आओ।"

यह एक मंगल गीत है जिसमें अग्नि का आवाहन किया गया है। इस गीत में अग्नि देव से प्रार्थना की गयी है कि वह इस भूमि पर उतरें। जिस क्षेत्र का यह गीत है वह पहाड़ी क्षेत्र है। वहाँ अग्नि का महत्व अधिक है। वैसे हमारे देश की संस्कृति में साधारणतया अग्नि का महत्व सदैव माना गया है। वैदिक ऋचाओं से आज तक अग्निदेव की उपासना किसी न किसी रूप में होती ही रही है। इस गीत में भी इसी परम्परा के अनुसार अग्निदेव का आवाहन किया गया है। उनसे प्रार्थना की गयी है कि वह इस मातृ लोक में आवें। यह मातृलोक क्या है? "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" तो अथर्व वेद की ऋचा है। इस पृथ्वी को माता के समान ही हम सदा से मानते रहे हैं। धरती हमारी मां है। हम उसके बेटे बेटियाँ हैं। जहाँ हम पैदा हुए, पाले पोसे गये, जिसकी धूल मिट्टी में खेलकर हम बड़े हुए, जिसके कण कण में हमारा प्राण बसता है, जिसके अणु अणु से हमें प्रेम है, जिसके लिये हमने सदा अपनी जान की बाजी लगायी है, वही हमारी मातृभूमि है, वही हमारा मातृलोक है।

गढ़वाल प्रदेश का लोकगीतकार सदियों से, सहस्त्रों वर्षों से, अनन्तकाल से, अग्नि की पूजा करता आया है, उसका आवाहन करता आया है। उसे अपने मातृलोक से प्रेम है। वह उसी के लिए अग्निदेव को निमंत्रित कर रहा है।

मगर अग्निदेव के न आने का कारण, इस निमंत्रण को न स्वीकार करने का कारण भी ध्यान देने योग्य है। जिस लोक में मां बेटी अथवा बाप बेटे का सम्बन्ध स्नेह का आधार छोड़ चुका हो, जिस समाज का इतना पतन हो चुका हो कि इस पवित्र रिश्ते में भी लेन देन, लेखा जोखा, नाप तोल चलने

लगा हो, जहां धन और अर्थ ने स्नेह, प्रेम, करुणा, ममता का स्थान ले लिया हो, जहां जीवन का दृष्टिकोण इतना घृणित, इतना अधिक भौतिकवादी, इतना अधिक व्यापारिक हो चुका हो, वहाँ अग्निदेव का, पवित्रता का, पवित्रता के प्रतीक, प्रकाश के पुंज अग्निदेव का अविर्भाव अथवा आगमन कैसे सम्भव हो सकता है ?

इस गीत में जो बात कही गयी है वह हमारे सामने इस समाज का नंगा चित्र ही उपस्थित नहीं करती, बल्कि इस बात की प्रेरणा भी देती है कि हम इस समाज को मूलतः बदलें और उसे उसका प्रकृत, स्वस्थ और स्वाभाविक रूप पुनः प्रदान करें।

इस सिलसिले में एक लोकगीत की ओर और ध्यान जाता है,

डिहवा, डिहवा, पुकारे डिहवरवा,
डीह सुनेला, हा, निरभेद।
तोहरा गरभ चढ़ि अइलीं रे डिहवा,
पहिल बोलिया न राखे मोर।

इस गीत में ग्राम देवता पुकार कर कह रहा है—"अरे ग्राम, ओ ग्राम, उठो जागो," पर ग्राम तो अचेत पड़ा सो रहा है। वह ग्राम देवता की पुकार सुनता ही नहीं। हाय, उसकी कुम्भ कर्णी नींद टूटती ही नहीं। ग्राम देवता कहता है, "अरे मेरे ग्राम, मैं तो तुम्हारे ऊपर गर्व करता था। मैं तो इस गर्व और अभिमान के भरोसे से ही तुम्हारे पास आया था। परन्तु तुम हो कि मेरी पुकार सुनते ही नहीं, किसी तरह जागते ही नहीं। तुम मेरी पहिली बात भी नहीं रख रहे हो। यह तुम्हारी कैसी नींद है, यह कैसी अचेतनता है ?"

जब ग्राम अपने देवता की बात नहीं सुनता तो उसका कल्याण कैसे होगा ? 'जन गन मन अधिनायक' की पुकार और चुनौती को अनसुनी करके हमारा देश, हमारा समाज कैसे जीवित रह सकता है ? उसी तरह, ग्राम देवता की चुनौती और पुकार को अनसुनी कर हमारे ग्राम कैसे जी सकते हैं ?

क्या ये गीत हमें अपना दिल टटोलने के लिए, आत्मालोचना करने के लिये प्रेरित नहीं करते ? ये हमारी आत्मा को खरोंचते नहीं ? हमें बल पूर्वक झकझोड़कर जगाते नहीं ? हमें सचेत और सजग नहीं बनाते ?

कविवर श्री सुमित्रानन्द पंत ने 'ग्राम्य देवता' को सम्बोधित करते हुए व्यंग में कहा था—

राम, राम,
हे ग्राम्य देवता, यथानाम,
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम।
विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह शाम।
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।
पण्डित, पण्डे, ओझा, मुखिया औ' साधु सन्त।
दिखलाते रहते तुम्हें स्वर्ग, अपवर्ग पन्थ।
जो था, जो है, जो होगा, सब लिख गए ग्रन्थ।
विज्ञान ज्ञान से बड़े तुम्हारे मंत्र तंत्र।

पंत जी ने ग्राम जीवन का जो चित्र यहाँ पेश किया है वह बिल्कुल सच्चा है। इसी चित्र को देखकर तो (उपर्युक्त गढ़वाली लोकगीत में) इस मातृलोक में आने से अग्निदेव ने साफ इनकार कर दिया था। अनीति, अत्याचार को जिस जीवन में प्रश्रय मिलता हो उसका आंचल अग्नि देव को प्रश्रय कैसे दे सकता था ? ग्राम देवता (ग्राम्यदेव नहीं) ने तो पुकार की परन्तु "डीह" यदि सोता ही रहे, जागने का नाम न ले तो क्या होगा ? पंत जी ने इस व्यंगात्मक ढंग से हमारे देश के 'ग्राम्य देवता' को ठीक ही याद किया है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि कविवर पंत के हृदय में ग्राम जीवन के प्रति आदर नहीं है। उन्हीं का कथन है,

मनुष्यत्व के मूल तत्व ग्रामों ही में अन्तर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत।

कविवर पंत जी ने "भारत माता" कविता में यह बात और भी स्पष्ट रूप में कह दी है—

भारत माता
ग्राम वासिनी,
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आंचल,
गंगा यमुना में आंसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा,
उदासिनी !
भारत माता
ग्राम वासिनी !
चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित
ज्ञान गूढ़
गीता प्रकाशिनी !
सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम, भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी !

जिस प्रकार कविवर पंत जी ग्राम जीवन की वर्तमान विकृतियों से असंतुष्ट है, क्रुद्ध हैं और जिस प्रकार वे ज्ञान गूढ गीता प्रकाशिनी संस्कृति और सभ्यता का आधुनिक रूप देखकर चिन्तित हैं, उसी प्रकार हम भी चिन्तित हैं। यदि हमें इस सम्बन्ध में कुछ करना है तो हमें इस संस्कृति को समझना होगा। बिना लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या किये हम उस संस्कृति तथा सभ्यता के मूल तक नहीं पहुँच सकते जो सहस्त्रों वर्षों के आतप वर्षा शीत को सहकर भी मरी नहीं है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी भावी संस्कृति के सारे उपादान यहीं की धूल मिट्टी में "अविकृत" पड़े हुए

हैं। इसलिए हमें धूल मिट्टी में सनी श्यामलाचंला संस्कृति की खोज में निकलना ही होगा।

हमारे लोक गीत लोक जीवन के सारे तत्वों को उभारने वाले, उन पर प्रकाश डालने वाले सीधी, सादी, सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं। लोक गीत पुरातत्व सम्बन्धी अन्य विषयों की भाँति ऐसी वस्तु नहीं है जिनका अध्ययन लोक जीवन से अलग रहकर, बन्द कमरे में बैठकर किया जा सके। इनको समझने, इनका मूल्य पहिचानने, इनकी सही व्याख्या कर पाने के लिए हमें वहाँ जाना पड़ेगा, उस लोक में जाना पड़ेगा जहाँ 'अग्निदेवता' जाने से इन्कार करते हैं। हमें वहाँ पूरी श्रद्धा, पूरी आस्था और पूरे विश्वास के साथ जाना पड़ेगा, क्योंकि हम वहीं उन गीतों में रमकर, उनके मूल तक पहुँच कर ही वह हीरा पा सकेंगे जो युगों युगों से हमारे समाज को ज्योति देता आया है और आगे भी देता रहेगा।

———

लोकगीत संग्रह

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ओज पूर्ण स्वरों में कहा है, "ग्राम गीतों ने जनता में एक अनिर्वचनीय सुख की सृष्टि की है।......कितने ही सहृदय मित्रों से मैंने सुना है कि उनकी कामिनियों ने अपने कोकिलकण्ठ-विनिन्दक स्वर से गीत सुना कर उनके मानस जगत पर आनन्द सुधा की वृष्टि की है। कितनी ही सुन्दरियों ने गीत गाकर अपने रूठे पतियों को मनाया है। कितनी ही देवियों ने बेटी की विदा के गीत गाकर कर, सजल नेत्रों से, अपनी कन्याओं के सिर पर हाथ फेर कर, करुणा रस से अपने आस पास के वातावरण को भिगो दिया है। कितनी ही ललनाओं ने गीत सुना-सुना कर अपने रसिक पतियों पर जादू डाला है। कितनी ही प्रमदाओं ने अपने परदेसी पतियों को पत्र में गीत लिखकर भेजा है और उन्हें घर वापिस आने को उत्सुक किया है। कितनी ही शिक्षिता बहिनों ने इन गीतों की महिमा जानकर स्त्री जाति की बुद्धि पर गर्व से सिर ऊँचा किया है।

"जब गृह देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरंगित हो उठते हैं। आकाश चकित सा जान पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई सी दिखाई पड़ती है। मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से, अपने उन मित्रों से, जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अन्तःपुरों को लौटो। कस्तूरी मृग की तरह सुगन्ध स्रोत की तलाश में कहाँ फिर रहे हो? स्वर्ग का सच्चा सुख तुम्हारे अन्तःपुर में है। वहाँ की हृत्तन्त्री के तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो। फिर देखो, कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है!"

मगर इन अगणित ग्राम गीतों अथवा लोकगीतों के रचयिताओं का क्या नाम है? क्या पता है? कब ये गीत रचे गए? किसने इनकी रचना

के लिए प्रेरणा दी ? किसके प्रश्रय में ये गीत अब तक जीवित रहे? जिस तरह हमारे अनेक मठ-मन्दिर भग्न स्तूप बन गए, जिस प्रकार अनेक चित्र मिट गए, अनेक कलाएँ गायब हो गयीं, उसी प्रकार हमारे अगणित गीत सदियों तक अपने जीवन के लिए संघर्ष करते करते अन्त में काल कवलित हो गए, मिट्टी में मिल गए, धूल के साथ उड़ गए !

अगले पृष्ठों में हम कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण और सरल लोकगीतों को प्रकाशित कर रहे हैं। ये लोकगीत मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, मालवी, गुजराती, पंजाबी, मणिपुरी और गढ़वाली भाषाओं के हैं। इतनी भाषाओं-बोलियों के गीतों की एक ही आत्मा, एक ही स्वर और एक ही सन्देश है जो इस बात का प्रमाण है कि लोकमानस और लोकवाणी ने भौगोलिक सीमाओं और अन्य नाना प्रकार की भिन्नताओं के आवरण के नीचे छिपी जनता की मूल सांस्कृतिक एकता को युगों युगों से किस प्रकार स्वस्थ और सुदृढ़ बनाए रखा है। ये गीत पंडित राम नरेश त्रिपाठी कृत "ग्राम गीत," श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत "बेला फूले आधी रात" तथा "धरती गाती है," श्री श्याम परमार कृत "मालवी लोकगीत," श्री सूर्य करण पारीक कृत "राजस्थानी लोकगीत," श्री हर प्रसाद शर्मा कृत "बुन्देल-खण्डी लोकगीत" तथा श्री सत्यव्रत अवस्थी के अप्रकाशित संग्रह से चुने गए हैं। कुछ गीत ऐसे भी हैं जिन्हें मैंने अपनी माँ, भाभी और बहिन से सुनकर नोट कर लिए थे।

जैसा कि हमारे पाठक अनुभव करेंगे ये गीत प्राचीन होते हुये भी चिरनवीन हैं क्योंकि इनकी आत्मा अमर है और इनकी वाणी में भारतीय संस्कृति के अमर स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। इनको समझने और इनका पूरी तरह आनन्द लेने के लिये, इनसे प्रेरणा ग्रहण करने के लिये, थोड़ी सी सहानुभूति की आवश्यकता है। ये गीत हमारे देश की जनता की धमनियों और धड़कनों में बसे हुये हैं। इनको सुनना अपनी आत्मा की आवाज़ को सुनना है।

परिशिष्ट १

लोकवार्ता का अध्ययन

वाई० एम० शोकोलव

लोकगीतों के अध्ययन के सम्बन्ध में यहां संसार प्रसिद्ध विद्वान अकेदेमीशियन वाई० एम० शोकोलव के कुछ विचारों को दिया जा रहा है। यद्यपि शोकोलव ने रूसी लोकगीतों को ध्यान में रख कर ही अपने सिद्धान्त स्थिर किये हैं, परन्तु वे सिद्धान्त ऐसे हैं जिनके सहारे संसार के किसी भी देश के लोकगीतों का अध्ययन किया जा सकता है। रूस की तरह भारत भी सामन्तवादी व्यवस्था से आगे बढ़ कर समाजवादी व्यवस्था अपना रहा है। इसलिये उसे भी अपनी प्राचीन सांस्कृतिक निधियों का पुनर्मूल्यांकन उसी प्रकार करना होगा जिस प्रकार सोवियत रूस में हुआ। जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का सहारा लेकर शोकोलव ने सोवियत रूस के लोकगीतों का अध्ययन किया वे सिद्धान्त अब लोकवार्ता और लोक संस्कृति के विद्वानों द्वारा स्वीकृत किये जा चुके हैं।

अपनी पुस्तक 'रशियन फोकलोर' के प्रथम अध्याय—'लोकवार्ता का स्वभाव और उसकी समस्याएँ' में शोकोलव ने इस विशेष अध्ययन के सिद्धान्त पक्ष का विवेचन किया है जिसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है।

लोकगीत जनसाधारण की अलिखित काव्य रचना है। यदि इसके साथ साहित्य शब्द जोड़ना है—साहित्य के लिखित रूप से यहाँ तात्पर्य नहीं है, बल्कि यहाँ हम साहित्य को उसके व्यापक अर्थ में ले रहे हैं—तो हमें लोकगीतों को उसकी विशेष शाखा के रूप में समझना पड़ेगा। इस प्रकार लोकगीतों को भी साहित्यिक अनुसंधान और अध्ययन का विषय मानना

पड़ेगा। अनेक बार पाश्चात्य विद्वानों ने अपना मत प्रकट किया है कि लोकगीतों और साहित्यिक अध्ययन में घनिष्ट सम्बन्ध है। पिछले वर्षों में सोवियत विद्वानों ने इस विचार को सुनिश्चित रूप दे दिया है। पहिले योरप में 'लोक साहित्य' अथवा 'लोकगीत' शब्द का बहुत प्रचलन था। परन्तु इन शब्दों को जिस अर्थ में उन्नीसवीं सदी में और उसके बाद भी प्रयुक्त किया गया, वह अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है। बाद में इसे अलिखित 'मौखिक' साहित्य कहा गया और, अंत में 'लोक साहित्य अथवा 'लोकगीत' शब्द का प्रयोग होने लगा। परन्तु बाद में इन शब्दों का अर्थ बदल गया। मगर हम 'लोक वार्ता' शब्द को ही अधिक समीचीन समझते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसी शब्द का प्रयोग मान्य है और इसका प्रयोग करने से वैज्ञानिक ढंग से काम करने में सुविधा भी होती है। लोकवार्ता के अन्तर्गत मौखिक काव्य और दूसरी कलाओं का सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। इस तरह लोकवार्ता दृश्य कलाओं (मूक नृत्य, नाट्य कला आदि) के निकट आ जाती है। मौखिक साहित्य—गीत, कहानी, कहावत आदि की जड़ें श्रमशील जन साधारण के जीवन में होती हैं, इसलिये 'लोकवार्ता' के विद्वान को किसी हद तक मानव जाति के विकास का ज्ञाता भी होना पड़ता है, वरना वह लोक वार्ताओं की सही व्याख्या करने में असफल रहेगा। इसी तरह लोकवार्ता के विद्वान को भाषाविद् भी होना पड़ेगा। वह जिस अलिखित काव्य साहित्य का संग्रह करता है उसके सम्यक् अध्ययन के लिये उसे भाषा, बोली आदि का भी विद्वान होना पड़ेगा। इस प्रकार इस क्षेत्र के विद्वान को रंग मंच, संगीत शास्त्र, मानव जाति शास्त्र आदि का ज्ञाता होना पड़ेगा।

लोक साहित्य और कलात्मक साहित्य में अन्तर क्या है? पहिले यह समझा जाता था कि लोक साहित्य का रचयिता कोई एक व्यक्ति नहीं होता जबकि लिखित साहित्य का कोई न कोई रचयिता अवश्य होता है। दूसरे, लोक साहित्य को कला विहीन और कलात्मक साहित्य को कला-मण्डित माना जाता था। परन्तु ये दोनों बातें तथ्य-हीन साबित हो चुकी हैं। इन प्रश्नों के सम्बन्ध में गम्भीर अध्ययन हो चुका है। यह कथन

बिल्कुल गलत है कि लोक साहित्य का रचयिता कोई एक व्यक्ति नहीं होता। इसके उल्टे यह साबित हो चुका है कि इसके रचयिता थे और वे कला, शिक्षा-अनुशीलन, कुशाग्रता तथा स्मरण शक्ति में बहुत आगे बढ़े हुये थे। यह भी साबित हो चुका है कि मौखिक गीत गाने वाले अक्सर उनके रचयिता भी रहे हैं। ऐसे लोगों में कुशाग्र बुद्धि वाले लोग रहे हैं, साधारण बुद्धि वाले, कल्पनाशील लोग भी रहे हैं और केवल नक़ल करने वाले भी। इस कला की सेवा करने वाले अनुभवी भी रहे हैं और नौसिखिए भी, विनोदी हँसोड़ भी रहे हैं और कठोर नैतिकतावादी भी। इस प्रकार कलात्मक साहित्य के रचयिताओं की ही भाँति अलिखित साहित्य के रचयिताओं में भी वैसे ही भिन्न-भिन्न प्रकार की योग्यता तथा स्वभाव वाले व्यक्ति रहे हैं। इसलिये 'लोकवार्ता' को ऐसी रचना समझना जिसका कोई रचयिता न हो, सर्वथा गलत है।

लोकगीतों में लेखक अथवा रचयिता का नाम नहीं होता। इसी के आधार पर लोग अक्सर कह देते हैं कि इनका कोई रचयिता ही नहीं था। परन्तु यह तो बिल्कुल ऊपरी बात है। रचयिताओं के नाम उनकी रचनाओं के साथ जुड़े नहीं रह सके। क्यों? इसलिये कि उनकी रचनाएँ अलिखित थीं। वे तो लोगों के मस्तिष्क में बनी रहीं और लेखकों का नाम धीरे-धीरे छूट गया। अनेक ऐसे गीत भी प्राप्त हो चुके हैं जिनमें रचयिताओं के नाम भी उनके साथ जुड़े रहे हैं।

यदि परिश्रम करके विभिन्न गीतों के विकास का इतिहास खोजा जाय तो अनेक गीतों के रचयिताओं का पता चल सकता है। परन्तु यह प्रयास बेकार ही है क्योंकि अधिकतर रचयिताओं के नामों का पता लगना प्रायः असम्भव है। रचना के समय इन लोगों ने अपना नाम जोड़ना बहुत महत्वपूर्ण नहीं समझा। वे गीत लिखे भी नहीं गये। मौखिक परंपरा में ही वे गीत जीवित रहे हैं। परन्तु लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य में अन्तर की मुख्य पहिचान यह विशेषता ही नहीं है। लिखित साहित्य में प्रतिभा सम्पन्न रचयिता अपना नाम जोड़ दिया करते थे और वे नाम अन्त

तक बने भी रहे। सामन्तवादी युग की अपेक्षा पूँजीवादी युग में यह परंपरा अधिक बलवती हुई।

इसके साथ ही इस भ्रम को भी हटा देना पड़ेगा कि लोक-साहित्य अथवा लोक वार्ता में कला नहीं होती। थोड़ा निकट से, गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर पता चल जायेगा कि वहाँ प्रायः हर कदम पर, कलात्मक कौशल और साहित्यिक कला के तत्व मिल जायेंगे। कहानी कहने वाले, वर्णन करने वाले और गीतकार अपनी कला में कितना परिश्रम करते हैं यह बात लोकवार्ता के विद्वानों से छिपी नहीं है।

अक्सर लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य में भेद इस सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है कि लोकवार्ताओं के पाठ में प्रायः अन्तर होता है। लिखित साहित्य में पाठभेद नहीं होता। यह सही है कि मौखिक साहित्य में एक ही पाठ नहीं होता और लिखित साहित्य में पाठ एक ही होता है। लेकिन लिखित साहित्य में अक्सर पाठान्तर होता है, इस तथ्य को सभी लोग जानते हैं। मुद्रण कला के विकास के पहिले पाण्डुलिपियाँ और हस्तलिपियाँ तैयार की जाती थीं। अक्सर मूल में सुधार भी कर दिया जाता था। कभी मूल को बड़ा या छोटा भी कर दिया जाता था। यही नहीं, मुद्रण कला के विकास के बाद जब पुस्तकें छपने लगीं तब भी पाठान्तर होते रहे। स्वभावतः पाठभेद का यह तत्व मौखिक साहित्य में लिखित साहित्य से अधिक रहा। कथावाचक या गायक अपनी स्मृति पर ज़ोर देकर ही पुराने पाठ को दोहराया करता था। प्रायः ऐसा भी हुआ है कि एक व्यक्ति एक कहानी अथवा गीत को जितनी बार दोहराता है उसमें कुछ न कुछ भेद हो जाता है। परन्तु लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य का यह अन्तर भी कोई मूलभूत अन्तर नहीं है।

अब परंपरा का प्रश्न आता है। अक्सर विद्वान इस तत्व को लिखित और मौखिक साहित्य के अन्तर का आधार मानते हैं। मगर हम यहाँ भी यही कहेंगे कि यह अन्तर भी गुणपरक नहीं, परिमाणपरक है। यह तो सही है कि काव्य परंपरा को छोड़ कर साहित्य के विकास की बात

सोची ही नहीं जा सकती। लोकवार्ता में परंपरा का तत्व अधिक बलशाली है। ऐसा इसलिये कि यद्यपि मौखिक रचना का कोई सुनिश्चित बाह्य रूप नहीं रहा है, फिर भी सदियों के दौरान में उसे अनेक स्तरों से होकर गुज़रना पड़ा है।

लोक वार्ता अतीत की प्रतिध्वनि है, परन्तु साथ ही वह वर्तमान की शक्तिशाली आवाज भी है। परन्तु यदि हम लोकवार्ता को केवल 'जीवित अतीत' के रूप में स्वीकार करलें तो हम वर्तमान काल में लोकवार्ता के महत्वपूर्ण कार्य और उसकी सामाजिक देन को अस्वीकार कर देंगे। लोकवार्ता वर्ग संघर्ष का एक अस्त्र रही है और आज भी है। इस रूप में वह कलात्मक साहित्य के अनुरूप ही रही है; दोनों में सामाजिक तत्व बराबर देखे जा सकते हैं। दोनों वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। दोनों उसके अस्त्र रहे हैं। यदि हम ऐसा न मानेंगे तो हमें लोकगीतों को केवल किसानों का गीत मान लेना पड़ेगा। सोवियत रूस के विद्वानों ने लोकवार्ता का अध्ययन इस दृष्टि से किया और उन्होंने किसानों के गीतों के साथ अन्य वर्गों के गीतों :का भी मूल्यांकन किया। इस प्रकार जहाँ कहीं भी मौखिक गीतों या वार्ताओं को वे पा सके सबका अध्ययन उन्होंने किया।

लोकवार्ताओं के विभिन्न कालों को निश्चित करना भी सरल कार्य नहीं है। मौखिक साहित्य का काल निर्णय करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। फिर भी गीतों और वार्ताओं के स्वभाव, उनके शब्दों और उनमें छिपे ऐतिहासिक तत्वों की छानबीन करने के बाद काल निर्णय का कार्य किसी हद तक पूरा किया जा सकता है। साहित्य के इतिहासकारों को मौखिक साहित्य का प्रयोग अपने इतिहासों के निर्माण में करना चाहिये। ऐसा करने पर ही वे यह कह सकते हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण साहित्य का इतिहास लिखा। परन्तु यह भी सोच लेना चाहिये कि मौखिक साहित्य का अपना स्वतंत्र अध्ययन होता है। साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास लिख देने से ही लोकवार्ता का इतिहास पूरा न हो जायेगा। लोकवार्ता के

विद्वानों और साहित्य के इतिहासकारों को आपसी सहयोग के आधार दोनों का समान रूप से अध्ययन करना चाहिये और यह पता लगाना चाहिये कि मौखिक साहित्य का कलात्मक साहित्य पर और कलात्मक साहित्य का मौखिक साहित्य पर कितना प्रभाव पड़ा। रूस में अठारहवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में ऐसे बड़े साहित्यकारों का नाम लेना कठिन है जिन्होंने कम अथवा अधिक मात्रा में, विभिन्न मंतव्यों से, विभिन्न सिद्धान्तों के कारण, कलात्मक रूप विधान, शक्तिशाली भाषा और आकर्षक रागों तथा धुनों के लिए लोकगीतों और लोकवार्ता से प्रेरणा और सहायता नहीं ली। अठारहवीं शताब्दी के साहित्य पर लोकवार्ता का क्या प्रभाव पड़ा यह सभी लोग जानते हैं। पुश्किन, गोगोल, लेरमान्तोव, मेलिनकोव, पेचेर्सकी, कोरोलेन्को, कोल्सोव, नेक्रासोव, तुर्गनेव, तालस्ताय, शेदरीन, दोस्त्योविस्की, लेस्कोव, गोर्की आदि ने लोकवार्ता में विशेष रुचि दिखलायी थी। बीसवीं सदी में भी प्रतीकवादी, भविष्यवादी, कल्पनावादी बालमोन्त, ब्रियुसोव, ब्लांक, बेली, गोरोदेस्की, मायाकोवेस्की, येसेनीन सभी लोकवार्ता की शरण लेते हैं। अनेक क्रान्तिकारी विचारों और मनोभावों की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बाग्रित्स्की, प्रोकोफियेव, सुरकोव, असेव आदि ने लोकावार्ता से लगातार सहायता ली है। अनेक लेखकों ने मौखिक काव्य का प्रभाव अपनी रचनाओं में स्वयं अनुभव किया है और उन्होंने लगातार, प्रयत्न करके उसके कलात्मक रूपों, भाषा और विषय तत्व को ग्रहण भी किया है।

पुश्किन ने ऐसी कहानियों और कहावतों की भाषा की प्रशंसा करते हुए कहा है, "कहानी तो कहानी ही है। मगर हमारी भाषा स्वयं अपने में एक संसार है। रूस के विस्तार और व्यापकता का जो पता इन कहानियों में चलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मगर कोई इसे प्राप्त कैसे करे? कहानी के अतिरिक्त भी रूसी भाषा को बोलना तो सीखना ही पड़ेगा। मगर नहीं, यह काम कठिन है, यह अभी सम्भव नहीं। लेकिन हमारी प्रत्येक कहानी में कितनी व्यापकता, कितनी सार्थकता, कितना महत्व है!

कितनी स्वर्ण राशि वहाँ है! मगर वह आपके हाथ नहीं लगती; नहीं लगती! ओह, कितना आनन्द मिलता है इन कहानियों को सुन कर। उनमें से हर कहानी एक कविता है।"

गोगोल ने भी लोकवार्ता के सम्बन्ध में इससे कम महत्वपूर्ण बात नहीं कही। "ओह, मेरे आनन्द, मेरे जीवन; ओ गीतों! मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ!"—ये शब्द गोगोल के मुँह से अपने आप निकल पड़े थे। ताल्स्ताय तो लोकगीतों और लोकवार्ता को, अनेक मान्यता प्राप्त ऊँची कलात्मक कृतियों से भी अधिक पसन्द करते थे। गोर्की ने १६३४ ई० में सोवियत लेखकों की अखिल देशीय कांग्रेस में दो बातें विशेष रूप से कही थीं—(१) मानव समाज के श्रम सम्बन्धी कार्यों से मौखिक काव्य का सदैव घनिष्ट सम्बन्ध रहा है (२) लोकवार्ता, इसी सम्बन्ध के कारण साधारणीकरण की शक्ति का गहरा और स्पष्ट चित्र खींचने में सफल रही है। गोर्की ने कहा था, "मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि लोकवार्ता और साधारण कमकर लोगों के मौखिक काव्य के द्वारा ही हमारे राष्ट्र वीरों के सबसे अधिक सजीव, खोजपूर्ण और कलात्मक चित्र खींचे गये हैं। हरक्यूलीज़, प्रोमीथियस, मिकुला सेल्यानिनोयिच, स्यातोगोर आदि सभी तर्क और प्रेरणा, विचार और भावना के समन्वय से ही मूर्तरूप प्राप्त कर सके हैं। यह समन्वय तभी सम्भव हो सकता है जब कि रचनाकार स्वयं रचना की सच्चाइयों में, जीवन के संघर्ष में संमिलित हो।" अन्त में मैक्सिम गोर्की ने फिर इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "शब्दों की कला लोकवार्ता से आरम्भ होती है। इन लोकवार्ताओं-लोकगीतों को एकत्र करो। उनका अध्ययन करो। उन पर काम करो। इससे तुमको और हम सब सोवियत रूस के गद्य तथा पद्य के लेखकों को विपुल सामग्री प्राप्त होगी। हम अपने अतीत को जितना अधिक जानेंगे, जितनी अच्छी तरह जानेंगे, उतनी ही अच्छी तरह, उतनी ही सरलता पूर्वक, उतनी ही गहराई से और उतने ही आनन्द के साथ हम उस वर्तमान के महत्व को समझ सकेंगे जिसका निर्माण हम इस समय कर रहे हैं।"

इसी प्रकार प्रकार लेनिन ने भी कहा था कि "इन गीतों में हम जन साधारण की आशा-आकांक्षा की झाँकी देख सकते हैं। मगर ऐसा तभी होगा जब इनका अध्ययन सामाजिक—राजनीतिक दृष्टिकोण से किया जाय।"

ये शब्द लेनिन के अपने नहीं हैं। एक व्यक्ति से बातचीत करते हुए लेनिन ने ये वाक्य कहे थे। उस व्यक्ति ने अपने संस्मरण में इसका चर्चा किया है। इसलिए चाहे ठीक यही शब्द लेनिन न भी कहे हों तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका भाव यही था। लेनिन की सलाह को मान कर लोकवार्ता के विद्वानों को चाहिये कि वे लोकवार्ता की प्रक्रिया का साधरणीकरण करें, 'सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि कोण' से उसका पर्यवेक्षण करें। लोकवार्ताओं के विकासक्रम का उद्घाटन कर उस इतिहास को खोज निकालें जिसमें अतीत के श्रम जीवियों की 'आशा-आकांक्षाएँ' प्रतिध्वनित होती हैं। उन्हें समझना चाहिये कि हमारे अपने युग की जनता के मनोविज्ञान और विचारधारा के अध्ययन के लिए लोकवार्ता से महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार लोकवार्ता अथवा मौखिक काव्य कलात्मक आनन्द का स्रोत अथवा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री ही नहीं है, बल्कि वह हमारे आज के सामाजिक और राजनीतिक कार्यों और जीवन के लिए भी अत्यावश्यक है।

परिशिष्ट २

लोक संस्कृति समाज

यहाँ हम लोक संस्कृति समाज की योजना का प्रारूप प्रस्तुत कर रहे हैं। यह साधारण सी योजना उत्तर प्रदेश को ध्यान में रख कर बनायी गयी है। उत्तर प्रदेश में एक ओर जहाँ ऊँचे पहाड़ और तराइयाँ हैं वहीं लम्बे चौड़े मैदान भी हैं। एक ओर आगे बढ़ा हुआ उन्नत क्षेत्र है तो दूसरी ओर वे पूरबी ज़िले हैं जो अपनी पिछड़ी कृषि व्यवस्था के कारण ग़रीब हैं। इस लम्बे चौड़े क्षेत्र में रहने वाले लोगों की बोलियों, वस्त्राभूषणों, रीति-रिवाजों और रहन सहन में बड़ा अन्तर है। बोलियों का अन्तर तो बहुत अधिक है और विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक दूसरे को खड़ी बोली के माध्यम से ही समझ पाते हैं। पश्चिमी जिलों के लोगों को भोजपुरी आसानी से समझ में नहीं आती। पहाड़ी लोगों को गढ़वाल, कुमाऊ आदि के निवासियों को, मैदानी लोगों की बातें कठिनाई से समझ में आती हैं।

लोक साहित्य तो स्थानीय अथवा क्षेत्रीय बोलियों में ही है। वह अधिकतर मौखिक है। उसे लिपि बद्ध करने पर अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। अक्सर शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आता। बहुत से शब्द ऐसे मिलते हैं जिनका एक क्षेत्रीय बोली म एक अर्थ होता है, दूसरी क्षेत्रीय बोली में उसी शब्द का दूसरा अर्थ होता है और खड़ी बोली में उसका अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। इसलिये विभिन्न बोलियों अथवा क्षेत्रीय भाषाओं का साधारण भावार्थ समझ लेने पर भी उनमें प्रयुक्त शब्दों का मर्म और सौंदर्य समझ में नहीं आता। अक्सर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसलिये लोक साहित्य का सच्चा मर्म समझने के लिए उनका लिखित रूप सामने आना चाहिये और हो सके तो उसी लिखित रूप को प्रामाणिक पाठ मान लिया जाय। इस सम्बन्ध में बोलियों के शब्द-कोशों की ओर भी ध्यान जाता है और उसकी अनिवार्यता भी स्पष्ट हो जाती है।

लोक नृत्यों, वाद्यों तथा लोक संगीत के अन्य अवयवों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। लोक चित्रों के संग्रह और प्रकाशन की भी समस्या सामने है। लोकोक्तियों और लोक कथाओं के संग्रह का काम भी अभी बहुत कम हुआ है। इस दिशा में सफलता तभी मिल सकती है जब इसके लिए वैज्ञानिक ढंग से सामूहिक अथवा संमिलत प्रयत्न किया जाय।

लोक संस्कृति समाज की स्थापना के पीछे यही कल्पना है। यदि केन्द्रीय सरकार संगीत नाटक एकेडमी की तरह इस कार्य के लिए भी एक एकेडमी बना दे तो यह कार्य अखिल भारतीय स्तर पर सुचारु रूप से हो सकता है। मगर केन्द्रीय सरकार यह कार्य जब करेगी तब तक के लिये चुप-चाप बैठा नहीं रहा जा सकता। इसलिये प्रादेशिक स्तर पर भी यह कार्य आरम्भ हो जाना चाहिये। यहाँ उत्तर प्रदेश को ध्यान में रख कर योजना का प्रारूप समुपस्थित करने का यही अभिप्राय है। लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाले विद्वान तथा कार्य कर्त्ता इस योजना पर विचार करें और आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन परिवर्द्धन करके इस महत्वपूर्ण कार्य में हाथ लगावें।

योजना का प्रारूप

लोक गीतों, लोक कथाओं, लोकोक्तियों, लोक संगीत, लोक नृत्यों, लोक वाद्यों लोक चित्रों आदि के अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश को निम्नांकित क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है (१) भोजपुरी (२) अवधी (३) बुन्देलखण्डी (४) ब्रज (५) खड़ी बोली का क्षेत्र (६) गढ़वाली (७) कुमाउँनी आदि। इन क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों, लोक कथाओं, लोकोक्तियों, लोकचित्रों आदि का संग्रह करना है तथा इन क्षेत्रों के नृत्यों, वाद्यों, उत्सवों, अभिनयों आदि का विस्तृत अध्ययन करना है। यह सारा कार्य सुचारु रूप से, सुव्यवस्थित और संगठित होकर चले, इसके लिए एक प्रादेशिक कार्यालय खोलना होगा। साथ ही प्रत्येक बोली के क्षेत्र के केन्द्रीय स्थान में क्षेत्रीय कार्यालय खोलने होंगे।

(१) लोकगीतों का संग्रह

इस कार्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होगा विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोक गीतों, लोक कथाओं, लोकोक्तियों तथा लोक चित्रों का संग्रह करना। प्रादेशिक कार्यालय यह कार्य अपने क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा करायेगा।

क्षेत्रीय कार्यालय अपने क्षेत्र के जिला अधिकारियों, जिला नियोजन अधिकारियों, शिक्षालयों के अध्यापकों, जिला बोर्डों, साहित्यिक संस्थाओं तथा इस विषय में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की सहायता और सहयोग से संग्रह का कार्य आगे बढ़ाएँगे। संग्रह-कर्ताओं को वैतनिक आधार पर रखना होगा। साथ ही अवैतनिक रूप से कार्य करने वालों को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष पुरस्कारों का प्रबन्ध करना होगा।

(२) पुस्तकों का प्रकाशन

पुस्तकों के लेखन, सम्पादन तथा प्रकाशन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि कम से कम समय में, कम से कम मूल्य पर, जनता को सारी पुस्तकें उपलब्ध हो सकें। विभिन्न बोलियों-भाषाओं के गीतों, कथाओं, लोकोक्तियों, नृत्यों वाद्यों के अतिरिक्त अल्पनाओं तथा चित्रों आदि पर भी पुस्तकें तैयार की जानी चाहिएँ।

गीतों के संग्रह के साथ विभिन्न क्षेत्रों के लोक नृत्यों, लोक अभिनयों, लोक चित्रों, लोकोत्सवों, मेलों आदि के सम्बन्ध में खोज पूर्ण सचित्र, वैज्ञानिक लेखों का संग्रह भी अलग अलग पुस्तकों में प्रकाशित किया जाना चाहिये।

(३) बोलियों के शब्द-कोश

लोक गीतों, लोक कथाओं और लोकोक्तियों के संग्रह के साथ ही बोलियों भाषाओं के संक्षिप्त शब्द-कोश भी तैयार किए जाने चाहिए। बिना सुसंपादित शब्द-कोशों की मदद के लोकगीतों तथा लोक साहित्य के असली मर्म को नहीं समझा जा सकता। अनेक विद्वानों ने लोकगीतों के अपने संग्रहों के साथ उदाहरण स्वरूप कुछ शब्द भी जोड़ दिए हैं और खड़ी बोली हिन्दी

में उनका अर्थ भी दे दिया है। परन्तु यह बिल्कुल अपर्याप्त है। अब लोक बोलियों के शब्द-कोषों के बिना काम नहीं चल सकता।

(४) त्रैमासिक पत्रिका

इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करने की व्यवस्था करनी होगी। इस पत्रिका के द्वारा इस पूरे आन्दोलन का संचालन होगा। लोकोगीतों, लोकोक्तियों, लोक कथाओं आदि के प्रकाशन के साथ, इस पत्रिका में शोध-कर्ताओं और विद्वानों के लेख होंगे और संग्रह तथा अन्य कार्यों से सम्बन्धित सारी सूचनाएँ रहेंगी। विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्य विवरण, खोज और संग्रह सम्बन्धी अनुभवों आदि के कारण यह पत्रिका अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

(५) वाचनालय तथा संग्रहालय

क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक कार्यालय में लोक संस्कृति से सम्बन्धित सभी पुस्तकों, पाण्डुलिपियों, चित्रों आदि को संग्रहीत किया जायगा। आरम्भ में तो इस प्रकार का कार्य प्रादेशिक कार्यालय के ही अन्तर्गत हो सकेगा। आन्दोलन के अधिक व्यापक हो जाने के बाद, क्षेत्रीय कार्यालयों के साथ भी इस प्रकार के वाचनालय और संग्रहालय खोले जा सकते हैं।

इस संग्रहालय में संसार के विभिन्न देशों में प्रकाशित लोकवार्ता से सम्बन्धित पुस्तकें, पत्रिकाएँ, चित्र आदि होंगे। साथ ही भारत की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित सारा साहित्य भी यहाँ संग्रहीत रहेगा।

यहाँ लोक संस्कृति की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित खोज और शोध में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों तथा लोगों को अध्ययन का अवसर मिलेगा। साथ ही स्वयं कार्यकर्ताओं की लोक संस्कृति सम्बन्धित जानकारी बढ़ेगी और वे अपने कार्य को अधिक योग्यता तथा कुशलता पूर्वक कर पायेंगे।

(६) गीतों की टेप रे[illegible]ार्डिंग

लोक गीतो[illegible] संग्रह के साथ साथ धुनों की रेकार्डिंग भी अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण [illegible]ह दुख की बात है कि हमारे लोकगीतों की धुनें

शीघ्रता पूर्वक नष्ट होती जा रही हैं। रेडियो से तथा अन्य उत्सवों पर जो लोक गीतों से सम्बन्धित धुनें प्रसारित की जाती हैं वे प्रायः ग़लत और अशुद्ध होती हैं। यदि गीतों की टेप रेकार्डिंग कर ली जाय तो हम अपने प्रदेश में प्रचलित सारी धुनों का संग्रह कर लेंगे और उनका प्रचार भी कर सकेंगे। धुनों की टेप रेकार्डिंग के बाद ही उनमें परिष्कार अथवा परिवर्तन की बात सोची जा सकती है।

(७) लोकोत्सव और रंगमंच

लोकोत्सवों का आयोजन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्वों पर या धार्मिक और सांस्कृतिक मेलों के अवसर पर किया जायगा। इन उत्सवों के माध्यम से जनसाधारण तथा लोक संस्कृति से रुचि रखने वाले व्यक्तियों को एक स्थान पर एकत्र होने और आपस में मिलने जुलने का अवसर मिलेगा। इसी के फलस्वरूप लोक रंगमंच का आविर्भाव, संस्कार और विकास भी होगा। इस कार्य के महत्व को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

उत्तराखण्ड में, विशेषतया उत्तर प्रदेश में, रंगमंच का कितना अभाव है इससे हम सभी लोग परिचित हैं। हमारे प्रदेश में राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना नितान्त आवश्यक है। परन्तु इस विराट आयोजना को तब तक सफल नहीं बनाया जा सकता जब तक कम से कम बड़े नगरों में हिन्दी रंगमंच की स्थापना नहीं हो जाती और सभी संस्थाएँ केन्द्रीय संस्था से सम्बद्ध नहीं हो जातीं।

हमारे प्रदेश के विभिन्न नगरों में गैर पेशेवर कलाकारों और अभिनेताओं की अनेक संस्थाएँ हैं। ये संस्थाएँ अक्सर अपने नाटक प्रस्तुत किया करती हैं। इन सभी संस्थाओं को एकसूत्र में बाँध कर प्रादेशिक स्तर पर हिन्दी रंगमंच की स्थापना होनी चाहिए। समस्या का यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है लोक रंगमंच का।

लोक रंगमंच की स्थापना का अर्थ है पुराने तथा प्रचलित रंगमंच का जीर्णोद्धार करना। नौटंकियों, कठपुतली का नाच, चमारों, धोबियों, अहीरों आदि के कथानृत्यों, रामलीला, कृष्ण लीला, विभिन्न ऋतुओं,

विभिन्न अवसरों तथा पर्वों पर होने वाले नृत्यों और गीतों को जीवित रखने, उनका संस्कार करने और उनको समाज की नयी मांगों के अनुरूप ढाल कर उन्हें राष्ट्रीय नव जागरण के आन्दोलन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रयुक्त करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। एक बार जब इस तरह लोक रंगमंच की स्थापना पूरे प्रदेश में हो जाएगी तो वही संस्था राष्ट्रीय रंगमंच का आधार भी बन जाएगी और उत्तर प्रदेश में भी रंगमंच का आन्दोलन बलवान हो जाएगा। जन जागृति के अतिरिक्त इसका सीधा प्रभाव हिन्दी के नाटककारों पर भी पड़ेगा और वे रंगमंच में अभिनय करने योग्य नाटक लिखने लग जाएँगे। इससे हमारे साहित्य का एक कमजोर अंग समृद्ध हो जाएगा।

(८) सम्मेलन

अक्सर इस विषय में रुचि रखने वाले विद्वानों, शोधकर्ताओं, कलाकारों, अभिनेताओं और साहित्यकारों के सम्मेलन भी बुलाए जा सकते हैं। इन सम्मेलनों में एक दूसरे के अनुभवों और जानकारी से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इन सम्मेलनों में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं विशेषतया गुजराती, महाराष्ट्रीय, बंगाली, उड़िया, असमिया, नेपाली, पंजाबी, कुमाउँनी, गढ़वाली, मालवी और राजस्थानी आदि में कार्य करने वाले विद्वानों तथा कार्य-कर्ताओं को भी निमंत्रित किया जा सकता है।

(९) लोक संस्कृति समाज

विभिन्न क्षेत्रों में यह कार्य सुचारु रूप से चले इसके लिए लोक संस्कृति समाज की स्थापना की जायगी। यह संस्था अपने प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा सारे कामों की देख भाल और व्यवस्था करेगी। इसके अन्तर्गत, अन्य आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त लोकगीतों, लोक अभिनयों तथा लोक नृत्यों आदि के प्रदर्शन की भी व्यवस्था की जायगी। ये लोकोत्सव आकर्षण और प्रेरणा के केन्द्र बन जाएँगे और इनसे खोज और संग्रह का कार्य तो आगे बढ़ेगा ही, यह आन्दोलन भी इन उत्सवों से मजबूत होगा और इसकी लोकप्रियता बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

परिशिष्ट २

सहायक साहित्य

लोक साहित्य सम्बन्धी अध्ययन का सूत्रपात विलियम जान टामस् के 'फोकलोरिस्टिक' नामक लेख से सन् १८४६ ई० में प्रारम्भ हुआ। पश्चिमी देशों में उन्नीसवीं सदी से ही इस क्षेत्र में विस्तृत कार्य प्रारम्भ हो गया था। हमारे देश के विद्वानों ने इस ओर बाद को ध्यान दिया। कर्नल टाड ने 'एनल्फ आव राजस्थान' के लिए सामग्री एकत्र करते समय इधर ध्यान दिया था। परन्तु सबसे पहले बङ्गाल में लोक साहित्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिक कार्य शुरू हुआ। अब लोक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से होने लगा है। समाज शास्त्र, नृतत्व, जातितत्व तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान के साथ ही इतिहास और भूगोल का अध्ययन भी लोक साहित्य के अध्ययन के लिए जरूरी हो गया है।

यहाँ लोक साहित्य के अध्ययन में सहायक सिद्ध होने वाली कुछ देशी-विदेशी साहित्य की पुस्तकों की एक सूची दी जा रही है।

हिन्दी

१. उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य

२. उदयनारायण तिवारी—वीरकाव्य

३. कन्हैया लाल सहल—राजस्थानी कहावतें

४. कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी ग्रामगीत

५. कृष्णानन्द गुप्त—ईसुरी की फागें, भाग १

६. खंग बहादुर मानन—सूधा बूँदा, बांकीपुर १८८४

७. खेताराम माली—मारवाड़ी गीत संग्रह

८. जगदीश सिंह गहलोत—मारवाड़ी ग्रामगीत

९. ताराचंद ओझा—मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह

१०. दुर्गा प्रसाद सिंह—भोजपुरी गीतों में करुण रस
११. देवेन्द्र सत्यार्थी—बेलाफूले आधी रात
१२. देवेन्द्र सत्यार्थी—धरती गाती है
१३. देवेन्द्र सत्यार्थी—बाजत आवे ढोल
१४. देवेन्द्र सत्यार्थी—क्या गोरी क्या सांवरी
१५. देवेन्द्र सत्यार्थी—धीरे बहो गंगा
१६. नंद लाल चत्ता—काश्मीर की लोक कथाएं, १६५०
१७. नरोत्तम स्वामी—राजस्थान का दूहा, १६३५
१८. निहाल चंद वर्मा—मारवाड़ी गीत
१६. परशुराम चतुर्वेदी—कबीर साहित्य की परख, १६५५
२०. पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी और हीरा लाल संत—हमारे लोकगीत, फरुखाबाद, १६५४
२१. मदन लाल वैश्य—मारवाड़ी गीत माला
२२. मन्मथ राय—हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव, इलाहाबाद, १६५३
२३. म० जोशी—मेवाड़ की कहावतें, उदयपुर
२४. मोहन लाल मेनारिया—राजस्थानी भीलों की कहानियाँ
२५. रतन लाल मेहता—मालवी कहावतें, राजस्थान शोध संस्थान उदयपुर
२६. रामसिंह पारीक और नरोत्तम स्वामी—ढोला मारूरा दूहा, का० ना० प्र०सभा, १६३४
२७. रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिक साहित्य
२८. राम इक़बाल सिंह 'राकेश'—मैथिली लकोगीत
२६. रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत
३०. रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य
३१. रामनरेश त्रिपाठी—अवधी लोकगीत
३२. रामनरेश त्रिपाठी—मारवाड़ के मनोहर गीत,
३३. रामनरेश त्रिपाठी—हि० मं० प्रयाग, १६३०

३४. राम नारायण उपाध्याय—निमाड़ी लोकगीत, हि० सा० स० जबलपुर, १६४६
३५. राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी काव्य धारा तथा आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, पटना, १६५२
३६. लखन प्रताप 'उरगेश'—अवेली लोकगीत, कटिया, विन्ध्य प्रदेश, १६५४
३७. वासुदेव शरण अग्रवाल—माता भूमि
३८. वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथ्वी पुत्र
३६. विद्यावती सिनहा 'कोकिल'—सुहाग के गीत
४०. शिवसहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ
४१. शिवसहाय चतुर्वेदी—गौने की विदा
४२. शिवसहाय चतुर्वेदी—पाषाण नगरी
४३. श्याम परमार—मालवी लोकगीत
४४. श्याम परमार—भारतीय लोकगीत
४५. श्याम परमार—मालवा की लोक कथाएँ, १६५४
४६. श्याम परमार—मालवी और उसका साहित्य, १६५४
४७. श्यामा चरण दुबे—छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, १६४०
४८. श्री चन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश के लोकगीत, १६५४
४६. श्री चन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश की लोक कथाएँ, १६५३
५०. संकटा प्रसाद और आर्चर, डब्ल्यू० जे०—भोजपुरी ग्रामगीत
५१. संत राम—पंजाबी गीत
५२. सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन
५३. सत्येन्द्र—ब्रज लोक कहानियां
५४. सत्येन्द्र—ब्रज लोक संस्कृति
५५. सुकुमार पगारे—संत सींगा जी, खण्डवा, १६४६
५६. सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत
५७. सूर्यकरण पारीक और गणपति स्वामी—राजस्थानी लोकगीत
५८. सूर्यकरण पारीक और गणपति स्वामी—राजस्थान के ग्रामगीत

५९. सूर्यकरण पारीक और गणपति—राजस्थान के लोकगीत
६०. हर प्रसाद शर्मा—बुन्देलखण्डी लोकगीत
६१. हरिहर निवास द्विवेदी—मध्यदेशीय भाषा
६२. हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदि काल
६३. हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका
६४. हजारी प्रसाद द्विवेदी—कबीर

बंगला

६५. अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—शिक्षा
६६. अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—मीनचेतन
६७. अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—बांगलार व्रत
६८. अनिल कांति लाल—बांगलार प्राचीन काव्य ,१९५०
६९. अक्षय कुमार दत्त—भारतीय साधक सम्प्रदाय, २ भाग
७०. अक्षय कुमार दत्त—महानिर्वाण तंत्र
७१. अशरफ़ होसेनेर ग्रंथावली
७२. आफ़ताब उद्दीन—मलय मनमोहन
७३. आसुतोष भट्टाचार्य—बांगलार प्राचीन काव्येर इतिहास
७४. इनामुल हक़—बंगे सूफी प्रभाव
७५. कालीचरण चक्रवर्ती—साधक राजमोहन
७६. काशीनाथ तर्कवागीश—व्रतमाला
७७. गिरिश चन्द्र सेन—तापस माला
७८. गुरु प्रसाद दत्त— पटुआ संगीत
७९. चारुचन्द्र वंद्योपाध्याय—बंग वीणा
८०. चौधरी—लौकिक धर्म और देवा देवी
८१. जसीम उद्दीन—नकसी कांथर माठ
८२. जसीम उद्दीन—इंगला नाचेर भक्ति
८३. दक्षिणारंजन मित्र —ठाकुर दादार झुलि
८४. दक्षिणारंजन मित्र—ठाकुर मार झूलि

८५. दिनेशचन्द्र सेन—मयमन सिंह गीतिका (पूर्व बंगगीतिका)
८६. दिनेश चन्द्र सेन—मयमनसिंह गीतिका, प्रथम खण्ड, संख्या २
८७. दिनेश चन्द्र सेन—पूर्वबंग गीतिका द्वितीय खण्ड, संख्या ८
८८. दिनेश चन्द्र सेन पूर्वबंग गीतिका, तृतीय खण्ड, संख्या २
८९. दिनेश चन्द्र सेन पूर्वबंग गीतिका, चतुर्थ खण्ड, संख्या २
९०. दिनेश चन्द्र सेन—गोपी चन्द्रेरगान—प्रथम तथा द्वितीय खण्ड
९१. दिलीप कुमार राय—संगीतिका
९२. दुर्गागति मुखोपाध्याय—डाक पुरुषेर कथा, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड
९३. नरेन्द्र नाथ मजूमदार—व्रत कथा
९४. नीलकांत सरस्वती—व्रत कथासार
९५. पवित्र सरकार—बाउलगान
९६. वीरेश्वर काव्य तीर्थ—व्रत माला विधान
९७. भोला नाथ दत्त—डाकेर कथा
९८. मंसूर उद्दीन—हारामणि, प्रथम खण्ड १९३०
९९. मंसूर उद्दीन—हारामणि, द्वितीय खण्ड, १९४२
१००. महेन्द्रनाथ कर—खनार वचन
१०१. मणीन्द्र नाथ बसु—सहजिया साहित्य
१०२. माणिक लाल वन्द्योपध्याय—व्रत उद्यापन
१०३. मोहित लाल मजूमदार—हेमन्तगोधुलि
१०४. रवीन्द्र नाथ ठाकुर—लोकसाहित्य, १९०७—८
१०५. रवीन्द्रनाथ ठाकुर—छन्द
१०६. राखालदास वन्द्योपाध्याय—बांगलार इतिहास, प्रथम तथा द्वितीय भाग
१०७. राधा गोविन्दनाथ—चैतन्य चरितामृत
१०८. राधागोविन्द नाथ—तरिकत दर्पण
१०९. राम प्राण गुप्त—व्रतमाला
११०. लक्ष्मी नारायण साहू—दण्ड नाथ
१११. शरच्चद्र नाथ—बाउलगान

११२. सुकुमार सेन—बंगला साहित्येर इतिहास
११३. सुशील कुमार दे—बांगला प्रवाद
११४. हरिदास पालित—आद्येर गम्भीरा
११५. हरिनाथ कांगाल—बाउलगान
११६. हरिनाथ कांगाल—बारा मासेर पूंथि
११७. हरिनाथ कांगाल—हिन्दुस्तानी ग्राम गीत
११८. हरिनाथ कांगाल—हिन्दुस्तानी लोकगीत
११९. हरिनाथ कांगाल—हासान उदास
१२०. क्षिति मोहन सेन—मध्ययुगे भारतीय साधनार धारा
१२१. क्षितिमोहन सेन—दादू
१२२. क्षिति मोहन सेन—कबीर
१२३. बंग साहित्य परिषद—प्राचीन पुथिर विवरण
१२४. बंग साहित्य परिषद्—मारफती संगीत
१२५. बंग साहित्य परिषद्—गोरक्ष विजय
१२६. बंग साहित्य परिषद्—बंग भाषा और साहित्य

पंजाबी

१२७. अमृता प्रीतम—पंजाब दी आवाज़, दिल्ली, १९५२
१२८. किशनचन्द्र मोगा—असली रंग बिरंगे गीत, अमृतसर, १९४६
१२९. दीनमुहम्मद कुश्ता—पंजाब दे हीरे
१३०. देवेन्द्र सत्यार्थी—गिद्धा
१३१. रामशरण—पंजाब दे गीत, लाहौर
१३२. ब्रह्मदास—रतन ज्ञान (गुरु), अमृतसर, १९००
१३३. हरभजन गियानी—पंजाब दे गीत (देवनागरी), अमृतसर
१३४. होतूराम—बिलोची नाम, लाहौर, १८८१

मराठी

१३५. अनुसूइया भागवत—जानपद गीते
१३६. कमलाबाई देशपाण्डे—अपौरुषेय वाङ्मय अर्थात् स्त्रीगीतें, पुणे

१३७. कालेलकर व चोरघड़े—साहित्यांचे मूलधन
१३८. गोरे, पा० श्र०—वरहाड़ी लोकगीतें, यावतमल
१३९. मालती दाण्डेकर—लोक साहित्याचें लेणें, सतारा, १९५३
१४०. वि० वा० जोशी—लोककथा व लोकगीतें
१४१. साने गुरु जी—स्त्री जीवन (दो भाग)

गुजराती

१४२. आचार्य, वी० यच०—चण्डी पाठनां गरबा
१४३. कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी (सम्पादक)—गुजराती साहित्य
१४४. कान्तावाल यच० डी० (सम्पादक)—प्राचीन काव्य माला, ३५ भाग
१४५. कान्तिलाल शाह—काश्मीरनी लोक कथाओ
१४६. गथु लालजी पण्डित—पर्वोत्सव तिथ्यावली
१४७. गदाधर भट्ट—सम्प्रदाय प्रदीप
१४८. गुजराती विद्यासभा—रासमाला
१४९. जगुश्ठे, एम० आर० (सम्पादक)—काव्य दोहा
१५०. जानी, ए० बी० (सम्पादक)—सिंहासन बतीसी, २ भाग
१५१. जोशी, बी० सी०—जाति अने ज्ञाती, २ भाग
१५२. झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य
१५३. झवेरचन्द मेघाणी—रढ़ियाली रात (३ भाग)
१५४. झवेरचन्द मेघाणी—चून्दड़ी (२ भाग)
१५५. झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनो रसधार (५ भाग)
१५६. झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी विहार वटिया (३ भाग)
१५७. ठक्कर, सी० वी०—भाटिया कुलोत्पत्ति ग्रंथ
१५८. ठक्कर, यू० टी०—लुहनाज्ञाती निष्पत्ति अनेते नो इतिहास
१५९. ढेल्लु प्रयाण (विवेचनात्मक)
१६०. दलाल, सी० डी० (सम्पादक)—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह
१६१. दयाराम कवि—दयाराम कृत कविता (१३ भाग)
प्राचीन काव्यमाला, १८९०-९१

,१९४८

१६२. देसाई, बी० यल—दसा दिसावल वानिक ज्ञतीरीतिदरसक अहेवल
१६३. नर्मदाशंकर लाल शंकर कवि—देश व्यवहार व्यवस्थानां मूल तत्वो, १६१७
१६४. नाना लाल डी० कवि—गीता मंजरी, १६२८
१६५. पाण्ड्या और याज्ञिक—श्री नाड़ियाद वदनगरा नागर ब्राह्मण जाति ना रीति रिवाजो, १६१७
१६६. परकम्पा (विवेचनात्मक)
१६७. परिभ्रमण (विवेचनात्मक)
१६८. बुच, एम० ए०—उदारी पंथना नीति बचनो
१६६. भोजो भगत—कविता (प्राचीन काव्य माला), १८६०
१७०. मथुरादास, लावजी—भाटियानी कुल कथा
१७१. मेहता, एन० डी०—शाक्त सम्प्रदाय
१७२. रणजीतराय मेहता—लोकगीत
१७३. शाह, एस० एन०—ढोलामारु, बम्बई, १६५४
१७४. शिक्षा विभाग बड़ौदा—पाटीदार जातिना सांसारिक रीतिरिवाजनो एकीकरण

अँग्रेजी

१७५. अर्न्स्ट ग्रास—दि बिगनिंग आव् आर्ट्स
१७६. आनन्द कुमार स्वामी—आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स आव् इण्डिया
१७७. आर्चर, डब्ल्यू० जी—दि ब्लू ग्रोव्स
१७८. आयंगार, एम० वी०—पापुलर कलचर इन कर्नाटक
१७६. आयङ्गार, एम० एस०—तामिल स्टडीज़, मदरास, १६१४
१८०. इन्थोवेन, आर० ई०—फोकलोर आव् बाम्बे
१८१. इबेट्सन, डी०—पञ्जाब कास्ट्स, लाहौर, १६४६
१८२. एबट, जे०—दि कीज़ आव पावर
१८३. एबट, जे०—ए स्टडी आफ़ इण्डियन रियुअल्स एण्ड बिलीफ़, १६३२

१८४. एरेनफेल्स, ओ० आर०—मदर राइट इन इण्डिया, हैदराबाद (दक्खिन), १९४१
१८५. एलविन, वी०—गोंड फोक सांग्ज़
१८६. एलविन एण्ड हिवाले—फोक सांग्ज़ आव् छत्तीस गढ़, ४ भाग
१८७. एलविन एण्ड हिवाले—फोक सांग्ज़ आव् मैकाल हिल्स, ३ भाग
१८८. एलविन एण्ड हिवाले—फोक टेल्स आव् महाकोशल ३ भाग
१८९. एलविन एण्ड हिवाले—स्पेसीमेन्स आव् ओरल लिटरेचर आव् मिडिल—इण्डिया, भाग १, २, ५
१९०. एल्टन—ओरिजिन्स आफ़ इङ्गलिश हिस्ट्री
१९१. एवलोन, ए०—सरपेन्ट पावर, १९१९
१९२. ऐयाप्पन० ए०—ऐन्थ्रापालिजी आव् दि नयादीस, मद्रास, १९३७
१९३. ऐय्यर, एल० ए० के०—दि ट्रावनकोर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, ट्रिवेन्ड्रम, १९३७-४१
१९४. ऐय्यर एल. के.—दि कोचीन ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, मद्रास, १९०९-१२
१९५. ऐय्यर और नान्जुन दैय्या—दि मैसूर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, बंगलौर, १९२८-३०
१९६. काक्स, एम० आर०—इन्ट्रोडक्शन टू फोकलोर
१९७. किटरिज, जी० एल०—इंगलिश ऐण्ड स्काटिश बैलेड्स
१९८. कुंज बिहारी दास—ए स्टडी आव ओरीसन फोकलोर
१९९. क्लाड—मिथ्स एण्ड ड्रीम्स
२००. क्लाउड, बारिंग—स्ट्रेन्ज सरवाइवल्स
२०१. क्रुक, डब्ल्यू—एन इण्ट्रोडक्शन टु पापुलर फोकलोर आफ़ नार्दर्न इण्डिया
२०२. गमर—दि बिगनिंग आव् पोयट्री
२०३. गर्डन, पी० टी०—दि खासीज़, १९१४
२०४. गर्वे, गी० यस०—इण्डियन कास्ट्यूम्स
२०५. गैरोला, टी०—साम्स आफ़ दादू

२०६. गोमे, जी० एल०—एथनालोजी इन फोकलोर, १८६६
२०७. गोमे जी० एल०—फोकलोर ऐज़ ऐन हिस्टारिकल सायन्स
२०८. गोमे जी० एल०—हैण्ड बुक आव् फोकलोर, १८६०
२०६. गोवर—फोक सांग्स आव् सदर्न इण्डिया
२१०. ग्रास, अर्न्स्ट—दि बिगनिंग आव् आर्ट
२११. ग्रियर्सन, जी० ए०—बिहारी फोक सांग्स
२१२. चटर जी, एन०—यात्रा
२१३. चन्दा, आर० पी० यम० यस० यस०—नान वैदिक एलीमेन्ट्स इन ब्रह्मनिज़्म (वीरेन्द्र रिसर्च सोसायटी, राजस्थान)
२१४. चाइल्ड—इंगलिश ऐण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स
२१५. जेन्स, युनिखटिकल—दि पोयट्री आव् ओरियन्ट
२१६. जोगेन्द्र भट्टाचार्य—हिन्दू कास्ट ऐण्ड सेक्ट
२१७, टाड—एनल्स ऐण्ड ऐन्टीक्वीटीज़ आव् राजस्थान, आक्सफर्ड, १६२०
२१७. टेम्पल, आर० सी०—दि लेजेन्ड्स आव् दि पंजाब
२१६. टेलर, आर० बी—अर्ली हिस्टरी आव् मैनकाइन्ड
२२०. टेलर, ई० बी०—प्रिमिटिव कल्चर
२२१. ट्रिले, सी० पी०—ओरिजिन आव् रेलीजन
२२२. डाउसन, जे०—ए क्लासिकल डिक्शनरी आव हिन्दू माइथालोजी ऐण्ड रेलीजन, जियोग्राफी, हिस्ट्री एण्ड लिटरेचर, ४ भाग, १६०३
२२३. डाब्सन—दि प्रोडिगल्स
२२४. डाल्टन—डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव् बंगाल
२२५. डायर, थिसेन्टन—फोकलोर प्लान्ट्स
२२६. डे—म्युजिक आफ सदर्न इण्डिया
२२७. तोरु दत्त—ऐन्शेन्ट बैलेड्स ऐण्ड लेजेन्ड्स आव् हिन्दुस्तान
२२८. थर्सटन, ई० और रंगाचारी के०—कास्टस ऐण्ड ट्राइब्स आव् सदर्न इण्डिया, मद्रास, १६०६

२२९. थूथी, एन० ए०—दि वैष्णवाज आव् गुजरात, १९३५
२३०. दास, एस०—हिस्टरी आव् शाक्त
२३१. दासगुप्त, एस० बी०—आब्सक्योर रेलीजस कल्ट्स इन बंगाली लिटरेचर
२३२. दिवेतिया, एन० बी०—गुजराती लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर, भाग २, १९२९
२३३. डुब्बायस, एल०—हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज, १९०६
२३४. दुबे, एस० सी०—दि चमार्स, लखनऊ, १९५१
२३५. पाउण्ड, लुई—ओरल लिटरेचर
२३६. पैरी, एन० ई०—दि लखेर्स, १९३२
२३७. पोपले—म्यूजिक आव् इण्डिया
२३८. प्लेफेयर—दि गैरोज, १९०९
२३९. प्लाखानोव जी० वी०—आर्ट एण्ड सोसायटी
२४०. प्रोजेश बनरजी—डान्स आव् इण्डिया
२४१. प्रभु गुहा ठाकुर्ता—बंगाली ड्रामा
२४२. फास्ट, हावर्ड०—लिटरेचर ऐण्ड रियालिटी
२४३. फोरब्स, ए० के०—रासमाला
२४४. फिस्क—मिथ्स ऐण्ड मिथ्स मेकर्स
२४५. फीदरमैन—सोशल हिस्ट्री आव् रेसेज आव् मैनकाइन्ड
२४६. फैलेन—डिक्शनरी आव् इण्डियन प्रावर्ब्स
२४७. फ्रेजर, जे० जी०—फोकलोर इन दि ओल्ड टेस्टामेन्ट ३ भाग, लन्दन, १९१८
२४८. फ्रेजर, जे० जी०—तोफैनिज्म ऐण्ड ऐक्सोगेमी. भाग ४, लन्दन, १९१०
२४९. फ्रेजर, जे० जी०—दि गोल्डेन बाउ, १० भाग, तृतीय संस्करण, लन्दन, १९२२
२५०. बक, सी० एच०—फेथ्स, फेयर्स ऐण्ड फेस्टीवल्स आव् इण्डिया, १९१७

२५१. बनरजी, बी०—ऐथनालिजक दु बंगाल

२५२. बनरजी, शास्त्री—एथनाग्राफी (कास्ट्स ऐण्ड ट्राइब्स) विथ ए लिस्ट आव् दि मोर इम्पोर्टेन्ट वर्क्स आन इण्डियन एथनाग्राफी बाई डब्ल्यू० सीजलिंग इनग्रेन्डीस देर इन्डो एरिसचेन फिलोलाजिक ऐन्ड आलतर तुम सकन्ड, २ बैण्ड, ५ हेफ्ट, स्ट्रासबर्ग, १६२२

२५३. बसु, एम० एम०—पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट

२५४. बर्टन, आर०—सिन्ध रिविज़िटेड

२५५. बलेंट, एफ़० सी०—साइकालोजी आव् प्रिमिटिव कल्चर

२५६. बर्टन, आर० एफ़—सिन्ध ऐण्ड दि रेसेज़ दैट इनहैबिट दि वैली आव् इण्डस, १८५१

२५७. ब्वायस, फ्रेज—प्रिमिटिव आर्ट

२५८. ब्वाएड, आर० एच०—विलेज फोक आव् इण्डिया, १६२४

२५६. बेक, ए०—इण्डियन म्यूज़िक

२६०. बेकर, पाल—दि स्टोरी आव् म्युज़िक

२६१. बेनेफ़, जे०—पंचतंत्र

२६२. ब्रीफ़ाल्ट, आर०—दि मदर्स स्टडी आव् दि ओरीजिन्स आव् सेन्टीमेन्ट्स ऐण्ड इन्स्टीट्यूशन्स, ३ भाग, १६२७

२६३. ब्रूशर, कार्ल—आर्बिट ऐण्ड रिदम्स

२६४. मजूमदार, डी० यन०—सम आस्पेक्ट्स आव् दि कलचरल लाइफ़ आव् दि खासाज़ आव् दि सिस-हिमालयन रीजन (जे० आर० ए० एस० बी० लेटर्स, भाग ६, कलकत्ता १६४०)

२६५. मजूमदार, डी० यन०—ए ट्राइब इन ट्रान्जीशन, कलकत्ता, १६३७

२६६. मजूमदार, डी० यन०—स्नोफाल आव् गढ़वाल (सम्पादित)

२६७. मार्क्स, कार्ल—ए कान्ट्रीब्यूशन टु दि क्रिटीक आव् पोलीटिकल इकानामी

२६८. मिल्स, जे० पी०—दि ल्होटा नागाज़, १६२२
२६६. मिल्स, जे० पी०—दि आओ नागाज़, १६२६
२६६. मुखरजी, ए०—फोक आर्ट आव् बंगाल
२७१. रविपति गुरुब्या गरु—ए कलेक्शन आव् तमिल प्रावर्ब्स
२७२. रसेल, आर० वी० और हीरालाल—दि ट्राइब्स ऐण्ड कास्टस आव् सेन्ट्रल प्राविन्सेज़ आव् इण्डिया, १६१६.
२७३. राइस, एस०—हिन्दू कस्टम्स ऐण्ड देयर ओरिजिन्स, १६३७.
२७४. राबर्ट्सन, जी० एस०—दि काफ़िर्स आव् हिन्दू कुश, १८६६
२७५. राम कृष्ण, एल०—पंजाबी सूफ़ी पोयट
२७६. राय, एस० सी०—दि ओरावज़ आव् छोटा नागपुर रांची, १६१५
२७७. राय, एस० सी०—दि हिल भुइयाज़ आव् उड़ीसा, रांची, १६३५
२७८. राय, एस० सी०—दि खरीयाज़, रांची, १६३७
२७६. रीवर्स, डब्ल्यू० एच० आर०—दि टोड्स, १६०६
२८०. रोजेटी, डी० जी०—बैलेड्स आव् फेयर लेडीज़
२८१. रोरिगनेज़, ई० ए०—दि हिन्दू कास्ट्स, १८४६
२८२. लांग, जेम्स—ईस्टर्न प्रावर्ब्स एण्ड एम्बलम्स
२८३. लांग, जेम्स—बैलेड इन ब्लू चाइना
२८४. लिफ़नेर, जी० डब्ल्यू०—दरदिस्तान, इन १८६६, १८६२ एण्ड १८६५.
२८५. लीवी, आर० एच०—कलचर एण्ड एथनालोजी, १६१७
२८६. लोगन, डब्ल्यू०—मुलाबार, मद्रास, १८८७
२८७. ल्यूआर्ड, सी० ई०—एथनालोजिकल सर्वे आव सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी, लखनऊ, १६०६
२८८. वस्क—दि फोक सांग आव् इटेली
२८६. वारटोक, बेला—हंगेरियन पेज़ेन्ट म्यूजिक
२६०. विनय कुमार सरकार—फोक एलीमेन्ट्स इन हिन्दू कलचर

२६१. विनयतोष भट्टाचार्य—सदन माता
२६२. विनय तोष भट्टाचार्य—बुद्धिस्ट गाड्स
२६३. विनय तोष भट्टाचार्य—इकनोग्राफी आव् बुद्धिस्ट गाड्स
२६४. विलसन, एच० एच०—रेलीजस सेक्ट्स आव् हिन्दूज़
२६५. वेंकट स्वामी, एम० एन०—दि फोक टेल्स आव सेन्ट्रल प्राविन्सेज़ इन दि इन्डियन ऐन्टीक्वेरीज़, २४, २५, २६, २८, ३०, ३१, ३२
२६६. वेसटेर मारेक—हिस्टरी आव ह्यूमन मैरेज; ३ भाग, १६२२
२६७. वैडेल—लामाइज़्म
२६८. शहीदुल्ला—ले चैन्ट्स मिस्टीक्स
२६९. शेक्सपीयर, जे०—लुशी कुकी क्लान, १६१२
३००. शेरिफ़, ए० जी०—हिन्दी फोक सांग्स
३०१. शोकोलव, वाई० एम०—रशियन फ़ोकलोर
३०२. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—ओरीजिन ऐण्ड डेवलपमेण्ट आव् बंगाली लैंग्वेज
३०३. सेयर, रूथ—दि वे आव् स्टोरी टेलर
३०४. सोरले, एस० टी०—शाह अब्दुल लतीफ़
३०५. स्टैक—दि मिकिर्स, १६०८
३०६. स्ट्रेन्जवेज़, फाक्स०—म्युज़िक आव् हिन्दुस्तान
३०७. स्लेटर, जी०—ड्रेविडियन एलीमेन्ट्स इन इण्डियन कलचर, १६२८
३०८. हटन, जे० एच०—दि अंगामी नागाज़, १६२१
३०९. हटन, जे० एच०—दि सोमा नागाज़, १६२१
३१०. हटन, जे० एच०—दि प्रिमीटिव फिलासफ़ी आव लाइफ़, आक्सफोर्ड, १६३८
३११. हन्टर, डब्ल्यू० डब्ल्यू०—एनल्स आव् रुरल बंगाल, १८६८
३१२. हरप्रसाद शास्त्री—लिविंग बुद्धिज़्म इन बंगाल
३१३. हाडसन, टी० सी०—दि मिथीज़, १६०८

३१४. हिवाले, एस० और इलविन, वी०—सांग्स आव् दि फारेस्ट, लन्दन, १६३६
३१५. हिसलोप, एस०—पेपर्स रिलेटिंग टू दि एबारजिनल ट्राइब्स आव् सेन्ट्रल प्राविन्सेज़, नागपुर, १८३६
३१७. हैरप, लुई—सोशल रूट्स आव् दि आर्ट्स
३१७. हुसेन, युसुफ़—मिस्टिक इण्डिया इन मिडिल एजेज़

अन्य पुस्तकें

३१८. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका
३१६. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी
३२०. ए ग्लासरी आव् कास्टस, ट्राइब्स ऐण्ड रेसेज़ इन दि बरोडा स्टेट, बाम्बे, १६१२
३२१. ए रिपोर्ट आव् दि सेन्सस आव् बंगाल, विहार एण्ड उरीसा एण्ड सिक्किम—६ भाग, सेन्सस आव् इण्डिया, १६०१, कलकत्ता, १६०३
३२२. ओमेन्स एण्ड सुपरस्टीशन्स आव् सदर्न इण्डिया, १६१२
३२३. कबीर एण्ड हिज़ डिसाइपिल्स—आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
३२४. गुजरात पापुलेशन : हिन्दूज (बाम्बे प्रेसीडेन्सी गजेटियर, भाग ६, बाम्बे १६०१)
३२५. डिक्शनरी आव् फोक लोर, भाग २, १६५२
३२६. दि बलोचीस—एशियाटिक सोसायटी मोनोग्राफ्स, भाग ४, १६०१
३२७. दि लैण्ड आव् दि पेरूमल्स आर कोचीन, इट्स पास्ट ऐण्ड इट्स प्रेजेन्ट, मद्रास, १८६३
३२८. दि ओरीजिनल इनहैबिटेन्ट्स आव् युनाइटेड प्राविन्सेज़, ए स्टडी इन ऐन्थ्रापालोजी, भाग ११, आव् इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज़, १६३५
३२६. दि मिथ्स आव् मिडिल इण्डिया, १६४४-४५

३३०. नोट्स आन दि थैडोन कुकीज़शा, डब्ल्यू जे० ए० एस० बी० भाग २४, १६२८ नं० १, कलकत्ता १६२६

३३१. पाल्स आव् बंगाल

३३२. बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स

३३३. बरमीज़ ड्रामा—आक्सफोर्ड

३३४. मदर गाडेस कल्ट इन मगध—दि सर्चलाइट (एनिवर्सरी नम्बर १६२६, पटना, १६३०)

३३५. रिपोर्ट आन दि सेन्सस आव् इण्डिया, १६३१ (भाग १ आव् सेन्सस आव् इण्डिया १६३१, दिल्ली, १६३३)

अन्य हिन्दी पुस्तकें

३३६. राहुल सांकृत्यायन—'किन्नर देश' और 'हिमालय परिचय' पुस्तकों में दिये गये गीत

३३७. शिवदान सिंह चौहान—'प्रगतिवाद—जनपदीय भाषाओं का प्रश्न' (१८६-२७६)

३३८. हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय—लोक भाषा में सम्प्रदाय के नैतिक उपदेश (१६२-१६७)

३३६. त्रिलोकी नारायण दीक्षित—संत दर्शन—'संतों के लोकगीत' (२२६-२४२)

पत्र-पत्रिकाएँ और उनमें बिखरी सामग्री

हिन्दी

१. अवन्तिका (अगस्त, १६५३)—'हिन्दी के साहित्य के इतिहास में लोक साहित्य'—शिवनन्दन प्रसाद एम० ए०

२. अजन्ता (अगस्त, १६५२)—आदिवासियों के प्रेम गीत कल्याण विंदनूरकर

३. अजन्ता (जनवरी, १६५४)—'भारतीय लोक साहित्य का विचार'-तिलक

४. अजन्ता (जनवरी, १९५४)—'आन्ध्र देश की कविता और लोक गीतों से उसका विकास'—वेंकटेश्वर शास्त्रालु
५. अजन्ता (फरवरी, १९५४)—'भारतीय लोक गीतों में नारी' —कृष्णलाल हंस
६. अजन्ता (अप्रैल, १९५४)—'पंजाबी लोक साहित्य'—करतार सिंह दुग्गल
७. आजकल : आदिवासी अंक, १९५४,—लोक कथा अंक, १९५४ तथा विभिन्न अंकों की सामग्री
८. आलोचना (अप्रैल, १९५२)—'लोक साहित्य की यथार्थवादी परंपरा —देवेन्द्र सत्यार्थी
९. आलोचना (जूलाई १९५२)—'हिन्दी साहित्य के विकास में लोक वार्ता की पृष्ठ भूमि—डा० सत्येन्द्र
१०. कल्पना (फरवरी, १९५१)—'लोक गीत' शीर्षक सम्पादकीय
११. कल्पना (फरवरी, १९५३)—'भारतीय लोक कला'—अजित कुमार मुकर्जी
१२. जनपद (हिन्दी जनपद परिषद का त्रैमासिक)—प्रत्येक अंक
१३. दक्षिण भारत (जनवरी, १९५४)—'महाराष्ट्र के लोकनाट्य' —श्याम परमार
१४. नया पथ (अगस्त, १९५३) 'लोक भाषा और लोक साहित्य'—राहुल सांकृत्यायन
१५. नयी धारा (मासिक)—'जंगल गाता है' स्तम्भ के लेख
१६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग १७, अंक ३)—'मेरठ के आस-पास क्षेत्र वाले मुहावरे'—राजेन्द्र सिंह
१७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग १८, अंक १-२)—गढ़वाली भाषा के पाषाण (कहावत)—शालिग्राम वैष्णव
१८. प्रतिभा (फरवरी, १९५४)—'छत्तीस गढ़ के सांस्कृतिक गीत' —देवी प्रसाद वर्मा
१९. प्रतिभा (फरवरी, ५४)—'रूसी लोक साहित्य में जादू टोना, —राजेन्द्र ऋषि

२०. प्रतिभा (मार्च, ५४)—'होली के छत्तीसगढ़ी लोगगीत'—कमलकुमार

२१. (मार्च, ५४) 'फागों का त्योहार'—देवीशंकर अवस्थी

२२. पाटल (मार्च, ५४)—'लोक साहित्य की समस्यायें'—बैजनाथ सिंह विनोद

२३. पाटल (अप्रैल, ५४)—'भोजपुरी लोकगीत में नारी'

२४. प्राच्य मानव वैज्ञानिक, १६४६ का अंक—'लोक गीतों का सांस्कृतिक महत्व और कवित्व'—नरेश चन्द्र

२५. ब्रजभारती (ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा) के अंक

२६. भारती (जूलाई, १६५०)—काठियावाड़ और गुजरात के गर्बागीत —कुसुमपाल निहारिका

२७. भोजपुरी (पटना)—लोक साहित्य और अन्य अंक

२८. मधुकर (वीरेन्द्र केशव सा० परिषद्, टीकमगढ़) १६४० से ४५ तक के अंक

२६, 'राजस्थान' (राजस्थान रि० सो० कलकत्ता) सं० १६६२ के अंक

३०. राजस्थान भारती (सादूल राजस्थानी रि० इन्स्टीट्यूट, बीकानेर) —सन् '५१-५२ और' ५३ अंक

३१. राष्ट्रभारती (नवम्बर, १६५१)—'गंगा-गौरी सम्वाद'—वाराणसी राममूर्ति रेणु

३२. राष्ट्रभारती (अप्रैल, ५४)—'रूसी लोक साहित्य में विलाप गीत —राजेन्द्र ऋषि

३३. लोकवार्ता (लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ़) प्रत्येक अंक (१६४५-४६)

३४. विश्वमित्र (मासिक) जनवरी १६४७—'दक्षिण बिहार के ग्रामगीत' —मोहन प्रसाद सिंह

३५. विशाल भारत (फरवरी, १६३६)—'दो मारवाड़ी गीत'— लक्ष्मी नारायण पचीसिया

३६. विक्रम (श्रावण, २००७) 'जीजा या बढ़ी के गीत'—श्याम परमार

३७. विक्रम (वैशाख, २००६)—'मालवी-ग्राम-साहित्य की पहेलियाँ' —चिन्तामणि उपाध्याय

३८. विक्रम (माघ, २०१०)—'लोक साहित्य की मीरा—चन्द्र सखी
—चिन्तामणि उपाध्याय
३९. विन्ध्य भूमि (मार्च, १९५४)—'लोक कला और लोक साहित्य'
—मार्कण्डेय
४०. वीणा (मार्च-अप्रैल, १९५४)—'लोक कथाओं की जन्मभूमि-पंजाब'
—नरेन्द्र धीर
४१. वीणा (जून, १९५०)—'लोकगीत एक परिचय'—श्याम परमार
४२. सम्मेलन-पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) हि० सा० स० प्रयाग,
२०१०
४३. सम्मेलन पत्रिका (पौष शुक्ल, २०१०)—'निमाड़ी लोक कहावतें
और उनका सौन्दर्य'—रामनारायण
४४. समाज (नवम्बर, १९४९)—'लोकनृत्य और गीत'—रामइक़बाल
सिंह राकेश
४५. साधना (जुलाई, १९४१)—'चैता : ग्राम संगीत'—नरसिंहराम शुक्ल
४६. साधना (अगस्त, १९५१)—'बनजारों के गीत'—मूलचन्द 'शौर'
४७. सुमित्रा (सितम्बर, १९५२)—वर्षा और स्वास्थ्य विज्ञान'—शिवसहाय
चतुर्वेदी
४८. सुमित्रा (नवम्बर, १९५२)—मालवी साहित्य का संक्षिप्त परिचय
४९. हंस (फरवरी १९३६)—'हमारे ग्राम गीत'—देवेन्द्र सत्यार्थी
५०. हंस (सितम्बर १९६०)—'लोकगीत : एक अध्ययन—'राकेश'
५१. हंस (सितम्बर १९४०)—छत्तीस गढ़ी ग्राम्य कथाएँ'—श्यामाचरण
दुबे
५२. हंस (सितम्बर १९४०)—'मालव लोक गीतों कीनारी'—प्रभागचन्द्र शर्मा
५३. हंस (सितम्बर १९४३)—'मातृ भाषाओं का प्रश्न'—राहुल सांकृत्यायन
५४. हिन्दुस्तान साप्ताहिक के लेख एवं लोक साहित्य विशेषांक, २ मई,
१९५४
५५. अमृत पत्रिका, १९५४—१९५४ के अंक

[बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका]

१३०१

१. छेल भुलान छड़ा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर १०१-१६२

२. कलिकातार संगृहीत छड़ा— ,, १६३-२०२

१३०२.

३. छेले भुलानछड़ा—वंसतरंजन राय २६७-३७१

४. सांओताल परगनार छड़ा—वंसतरंजन राय ३७१-३७४

५. मैथिलिछड़ा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ३७४-३८१

१३०३

६. छड़ा (वर्द्धमान)—कुंजलाल राय ५६-६१

७. छड़ा (हुगली)—अम्बिकाचरण राय ६१-६४

१३०६

८. गोविन्द चन्द्रेर गीत—शिवचन्द्र शील २६७-२७२

१३०८

९. दक्षिणापथे प्रचलित पूजा ओ व्रत—दीनानाथ वन्द्योपाध्याय १५-२२

१३०९

१० चट्टग्रामी छेले भुलानो छड़ा—अब्दुल करीम ७६-८१

११. व्रत विवरण—राम प्राण गुप्त १०७-१२०

१३१०

१२. चट्टग्रामी छेले भुलान छड़ा—अब्दुल करीम ११३-११६

१३११.

१३ चट्टग्रामी छेले भुलानो छड़ा—अब्दुल करीम १०७-११४

१३१२

१४. चट्टग्रामी छेले भुलानो छड़ा—अब्दुल करीम १७७-१८८

१५. निरक्षर कवि ओ ग्राम्य कविता—मोक्षदाचरण भट्टाचार्य ४०-४७

१३१३.

१६. ग्रामगीति—दक्षिणरंजन मित्र मजूमदार १२६-१४५

१७. बंगाली मेयेरव्रत कथा—अक्षय चन्द्र सरकार २३-२४

१३१४

१८. ग्राम्य देवता—रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ३५-४४

१९. बरिशालेर ग्राम्यगीति—राजेन्द्र कुमार मजुमदार १२४-१२८

२०. आद्ये र गंभीरा—हरिदास पालित ४-७६

१३१६

२१. साँओताली गान—सरसीलाल सरकार २४९-२५२

१३१७

२२. बाघाइएर बरात—योगेन्द्रचन्द्र भौमिक १६७-१७०

१३१९

२३. मानभूमि जेलार ग्राम्य संगीत—हरनाथ घोष २४१-२५४

१३२२

२४. निमाई सन्यासेर पाला—शचीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय २४९-२६४

प्रवासी

१३०७

१. मैथेली साहित्य ओ वार व्रत—अघोरनाथ चट्टोपाध्याय २२५-२२७
२६५-२६७

२. भूतेर बाप—गिरिजा कुमार घोष २३७-२४२

३. बिहु—अन्नदा प्रसाद चट्टोपाध्याय २६३-२६५

४. चैत्रपूजा—रसिकचन्द्र वसु ४२९-४३५

१३१०

५. होली गीत—नगेन्द्रनाथ गुप्त ४७२-४७४

६. काजली (कजली ?) परब—कोई प्रवासिनी ३६०-३६५

७. पूर्व बंगेर मेयेलि व्रत ५१६-५२०

१३१४

८. बंगे हिन्दू ओ मुसलमान—एक बंगाली १९१-२०३

१३१६

९. गोपी चाँदेर माता—विश्वेश्वर भट्टाचार्य ४१३-४१६

१३३३

१०. रूपकथा ओ इतिहास—शचीन्द्र लाल राय ३२८-३३२

११. 'तुषु' पूजा—शिशिर सेन ३८६-३८७

१२. बंगभाषाय बौद्धस्मृति—रमेशचन्द्र बसु ४९८-५०६

१३३४

१३. ग्राम्यगीति ओ कविताय बाराषे—हिरन्मय मुंशी ५०४-५०५

१४. धर्मेरगान कलकालेर—योगेशचन्द्रराय ६३६-६४५

१३३५

१५. लालनशाह—वसंत कुमार पाल ३८—४२

१६. बाउल गान—मुहम्मद मनसूर उद्दीन ३१४

१७. मैमनसिंहेर पल्ली कवि कंक—चन्द्रकुमार दे ५१३—५३२

१८. इन्द्राली पूजा—राजेन्द्र कुमार शास्त्री ६०१—६०२

१३३६

१९. यमपुकुर व्रतेर प्राचीनत्व—अनिल चन्द्र गुप्त ५७

२०. गुजराटे गोपी चाँदेर गान—ननीगोपाल चौधुरी ६३६—६४०

१३३७

२१. गुजराटी गरबा—पवित्रकुमार गंगोपाध्याय ४०२—४०७

२२. हुगलीर पल्ली कवि रसिकलाल राय—मनमोहन नरसुन्दर ६३७—६४१

२३. सावित्री व्रत—अनुरूपा देवी ८०७—८१०

१३३८

२४. पोलाण्डेर प्राचीन नृत्य कला—लक्ष्मीश्वर सिंह ७६२—७६५

१३३९

२५. बांगलार रसकला सम्पद—गुरूसदय दत्त १०१—१०३

२६. पल्ली शिल्प—जसीमुद्दीन ८०६—८१७

२७. बांगलार लोकनृत्य ओ लोक शिल्प—गुरूसदय दत्त ८

१३४०

२८. लिंगोपासना—विधुशेखर भट्टाचार्य— ७४१—७४२

२९. राजघाटेर व्रतनृत्य—गुरुसदय दत्त—१०१—११२

३०. विद्यासागर उपाख्यानेर मुसलमानी रुप—चिन्ताहरण चक्रवर्ती ५००—५०१

१३४१

३१. नृत्यरता भारती—अजित कुमार मुखोपाध्याय

विविध

(त्रैमासिक, मासिक और दैनिक आदि संक्षेप; आ० बा० प०—आनन्द बाजार पत्रिका)

१. पूर्व बंगेर साहिरगान—प्रभात कुमार गोस्वामी, आ० बा० प० ६—११—१९४१

२. हारामणि—मनसुर उद्दीन—सत्यवार्ता, ईद अंक, १९४०

३. बांगलार लोक संगीत—जरीन कलम, विचित्रा मासिक

४. सोंओताल पल्ली गीति—चारुलाल मुखोपाध्याय, देश साप्ताहिक (१९३७)

५. श्री हटेरपल्ली गीति—आब्दर रज्जाक, आ० बा० प० २९–४–१९४१

६. लालन फकीर—विश्वनाथ मजुमदार आ० बा० प० २९-४-४१

७. कालिकाता विश्वविद्यालयेर प्रवेशिका परीक्षार सङ्गीत प्रश्न पत्र आ० बा० प० १६-३-४१

८. छेले मुलान छड़ा—तारकनाथ वन्द्योपाध्याय, आ० बा प० १६-३-४१

९. वर्द्धमान जेला पल्ली-साहित्य-सम्मेलन आ० बा प० १८-४-४१

१०. लोकसाहित्य संग्रह—सुरेन्द्र नाथ दास, युगान्तर दैनिक १४-१०-४२

११. निखिल बङ्गपल्ली साहित्य सम्मेलन—आ० बा० प० ३१-३-४०

१२. बाजनाय आपत्ति—आ० बा० प० २७-४-४०

१३. शिलचरे शोचनीय हत्याकाण्ड—आ० बा० प० १२-३-३७

१४. बाङ्गलायपल्ली गान सम्बन्धे यत्किंचित आलोचना—मनमोहन घोष, विचित्रा

१५. कविगान—पूर्णचन्द्र भट्टाचार्य, आ० बा० प० १४ श्रावण १३४६

१६. कविगान—पूर्णचन्द्र भट्टाचार्य, आ० बा० प० ३१ श्रावण १३४६

१७. उत्तरबंगे चोरेर छड़ा—तारा प्रसन्न मुखोपाध्याय, आ० बा० प० १५-६-१६३६

२३. बाऊल ओ मुर्शिदी गान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० १६४०

२४. रङ्गपुरेर भाएया गान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० ७-१-१६४०

२५. जारी गान ओ पागला कानाइ—माधव भट्टाचार्य, आ० बा० प० ११-१२-१६३६

२६. पश्चिमबंगेर भादो जागरण गीत—फाल्गुनी मुखोपाध्याय, आ० बा० प० ६ वैशाष १३४६

२७. मुर्शिदीगान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० १०-१२-१६३६

२८. मेघदूत—बिजली, नवशक्ति साप्ताहिक, २६ जनवरी १६३२

२६. बाङ्गलार पल्ली सम्पद-गुरूसदय दत्त, बंगलक्ष्मी, फाल्गुन १३३७

३०. प्राचीन बाङ्गला साहित्य-यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० ६ जुलाई १६३६

३१. बाउलेर धर्म—बंगवाणी ७ माघ १३३८

मराठी

१. अनसूया लिमये—सहा महारावग, सत्यकथा, दिवाली अंक नवम्बर, १६५२

२. उ० मा० कोठारी—स्त्री हृदय, अहमद नगर कालेज, त्रैमासिक, अगस्त १६५१

३. उ० पठरीयाविठ्ठल, अहमद नगर कालेज त्रैमासिक, फरवरी, १६५२

४. कमला बाई देश पाण्डे—महाराष्ट्रातील कौटुम्बिक जीवन, प्रसाद, अप्रैल १६५३

५. कमला महाराष्ट्रातील अपौरुषेय वाङ्मय शोभा, जुलाई १६४६

६. कर्वे, चि० ग०—'मुबआची लोकगीतें'—प्रसाद, अप्रैल १६५२

७. कर्वे—'कहाण्याच्या शास्त्रीय अभ्यास ची दिशा'—प्रसाद, जनवरी १९५२
८. कर्वे—'आसरा अर्थात जलदेवता सम्प्रदाय'—प्रसाद, जून १९५२
९. कर्वे—'कोकणांतील मुतें' प्रसाद, जुलाई १९५२
१०, काले, बी० ए०—'आगरी लोकांची गीतें' (Agris: A Socio-Economic Survey निबन्ध का परिशिष्ट, १९५२)
११. दुर्गा भागवत—हदग्याचीं व भोंडल्याचीं गाणी, सत्यकथा—फरवरी १९५२
१२. दुर्गा—'वणजारी ओव्याव गीतें', साहित्य सहकार, सितम्बर अक्तूबर १९५२
१३. दुर्गा—'कृष्णदेवता सीता', सत्यकथा, सितम्बर १९५२
१४. दुर्गा—'तुलशीच्या कथा', सत्यकथा, अप्रैल १९५२
१५. दुर्गा—'लोकगीतांचा प्राचीन प्रचारक वररुचि', सह्याद्रि,जनवरी १९५३
१६. दुर्गा—'ट्य ूटानिक लोक साहित्य', केसरी, ४ जनवरी १९५३
१७. नरेश कवड़ी—लोकविद्या आणि लोकवाङ्मय,' सत्यकथा, अक्तूबर १९५२
१८. चिपलूणकर, मो० पा०—'हवामान सम्बन्धींचे वाक्य प्रचार', चित्रमय-जगत, जुलाई १९५२
१९. मालती दाण्डेकर—'ग्रामीण महिला वाङ्मय', वसन्त, जून १९५२
२०. वालमकृष्ण चोरवड़े—'लोकगीतें', साहित्य, अक्तूबर १९४८
२१. सरोजनी बाबर—'जुनी ठेव', मन्दिर, १९५०
२२. सरोजनी—'जानपद ओवी', जनवाणी, दिवाली अंक, १९५०
२३. सरोजनी—'जानपद उखाणा', जनवाणी, दिवाली अंक, १९५१
२४. सरोजनी—'विरंगुलयाचीं गाणीं', लोकवाङ्मय, दिवाली अंक, १९५२
२५. सरोजनी—'लोकवाङ्मय', केलानन्द सरस्वती सत्कार ग्रन्थ, १९५२
२६. सरोजनी—'जात्यावरील गोड़ गाणी', समाज शिक्षणयाला, पुष्प ६
२७. सरोजनी—'खडेयांतील स्त्रियांची कविता', साहित्य पत्रिका, अप्रैल, मई, जून, १९५२

२८. सुलोचना सप्तर्षि—'प्रमाचा अथांग सागर', संगम, अक्तूबर १९५२

अंग्रेजी

१. सेन, दिनेश चन्द्र इस्टर्न बंगाल बैलड्स, मैमन सिंह

वोल. १ पार्ट १	१९२८ पे० ३२२
वोल. २ पार्ट १	१९२६ पे० ४६६
वोल. ३ पार्ट १	१९२८ पे० ४३५
वोल. ४ पार्ट १	१९३२ पे० ४४६

२. सेन, दिनेशचन्द्र—फोक लिटरेचर आफ बंगाल, १९२० पे० ३६२
३. सेन, दिनेशचन्द्र—ग्लिम्पसेज़ आफ बंगाल लाइफ, १९२५ पे० ३१३
४. सेन, दिनेशचन्द्र—हिस्ट्री आफ बंगाली लेन्गुएज ऐन्ड लिटरेचर १९११ पृ० १०३०
५. सेन, दिनेशचन्द्र—दि फील्ड आफ इम्ब्रायडर्ड क्वील्ट (ऊपर की पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद)
६. फोक सांग्स ऐन्ड फोकडान्स इन बंगाल, दि एडवान्स (डेली), १२ अक्टूबर १९३१
७. एल्युरिंग फोकलोर, दि इंगलिशमैन (डेली), अक्टूबर १३, १९३०
८. फोकआर्ट आफ बंगाल—अजित मुखर्जी, दि एडवान्स पूजा स्पेशल, १९३१
९. रिवाइवल आफ फोकसांग ऐन्ड फोकडान्स इन बंगाल—ए० सी० बनर्जी
१०. फोकसांग ऐन्ड फोकडान्स इन इंडियन स्कूल्स—जी० एस० दत्त, अमृत-बाजार पत्रिका, नवम्बर १३, १९३१
११. फोकसांग ऐन्ड फोकडान्स इन बंगाल, ए० बी० पी०; अक्टूबर ११, १९३१
१२. ए वीज़िट टू रोमां रोलां—पी० एस० शेशाद्री, ए० बी० पी; नवम्बर, ३, १९३१
१३. रीसेन्ट बंगाल लिटरेचर, दि मार्डन रिव्यू, जून १९३१

१४. ए बाल म्युजीशियन इन ढाका, ईस्ट बंगाल टाइम्स (ढाका) ६-१२-३३
१५. ब्रतचारी प्रिन्सपिल्स आव ट्रेनिंग—जी० एस० दत्ताज़ लेक्चर; ए० बी० पी० ३१-३-३६
१६. ए ब्रेक टू मानोटोनी—ब्रजेन्द्र नाथ सरकार (मथबुरिया खसमहल एच० ई० स्कूल मैगज़ीन, बारिसाल, १६३२
१७. इसप्रीचुअलिज़्म इन म्युजिक—हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड (डेली, कलकत्ता), १७-४-३८
१८. फिलासफी आव् अवर पीपुल—रवीन्द्रनाथ टैगौर, मार्डन रिव्यू, जून १६२६
१६. दि बाल्स आव् बंगाल—रमेशबोस, विश्व भारती क्वाटरली, अप्रैल १६२६
२०. स्टडी आव् हिन्दू म्युजिक, एरनोल्ड बेक्स लेक्चर्स, जनवरी १६३८
२१. मैन इन इंडिया (संथाल रेबेलियन नम्बर), राँची।
२२. जर्नल आव् दि डिपार्टमेन्ट आव् लेटर्स (कलकत्ता युनीवर्सटी)
२३. इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (कलकत्ता), इंडियन कलचर (कलकत्ता), कलकत्ता रिव्यू (कलकत्ता युनीवर्सीटी)
२४. जर्नल आव् एशियाटिक सोसाइटी आव् ग्रेट ब्रिटेन (लन्दन)
२५. मैन (जर्नल आव् दि रायल ऐंथ्रोपोलोजिकल इंस्टीट्यूट (लन्दन), इंडियन आर्ट ऐन्ड लेटर्स (लन्दन),
२६. रूपम (कलकत्ता) आदि में भी बड़े काम की सामग्री भरी पड़ी है।